मंत्रप्रतिलोम

दुर्गासप्तशती



प्रकाशक

महामण्डलेश्वर श्री संतोषी जी महाराज

श्री नरसिंह टीला, दुर्वासा आश्रम

श्री रामानन्द नगर धूपचण्डी, वाराणसी

मंत्रप्रतिलोम
दुर्गासप्तशती

लेखक :

अवधविहारी शरण त्रिपाठी



प्रधान सम्पादक :

आचार्य रामकृपालदास श्रीवैष्णव

उप सम्पादक :

शिवशंकर मिश्र (नव्य न्याय शास्त्री)



प्रकाशक :

महामण्डलेश्वर श्री संतोषी जी महाराज

श्री नरसिंह टीला, दूर्वाषा आश्रम

श्री रामानन्द नगर धूपचण्डी, वाराणसी

अनुक्रमणिका

प्रकाशक :
महामण्डलेश्वर श्री संतोषी जी महाराज
श्री नरसिंह टीला, दूर्वाषा आश्रम
श्री रामानन्द नगर, धूपचण्डी, वाराणसी

मुद्रक :
आनन्द प्रिंटिंग प्रेस
सी० २७/१७०-ए,
जगतगंज, वाराणसी

संस्करण १९९५

प्रतियाँ : १०००

मूल्य : २५.०० रु० मात्र

ग्रन्थ-परिचय

एकैव शक्तिः परमेश्वरस्य, भिन्ना चतुर्धा व्यवहार-काले।
भोगे भवानी पुरुषेषु विष्णु, र्युद्धे च दुर्गा प्रलये च काली॥

परमेश्वर की एक ही शक्ति है। वह व्यवहार काल में विभिन्न रूप से चार प्रकार की हो जाती है। (और वही शक्ति) भोग में भवानी, पुरुषों में विष्णु, युद्ध में दुर्गा तथा प्रलय में काली की संज्ञा पाती है।

वैष्णवों को जिस प्रकार 'श्रीमद्भागवतम्' सम्मान्य है, ठीक उसी प्रकार अथवा उससे भी बढ़कर शाक्तों को 'दुर्गासप्तशती'।

इस लोक प्रिय पुस्तक में अर्धश्लोक को कौन कहे, 'उवाच' तक को मन्त्र स्वीकार किया गया है। इस प्रकार ७०० सात सौ मन्त्रों के होने के कारण ही इसका नाम सप्तशती पड़ा है।

इसकी उत्तमता और लोक प्रियता का अनुमान इससे भी लगाया जा सकता है कि इस ग्रन्थ रत्न की देखा देखी अनेक सप्तशती ग्रन्थ लिखे गये। साहित्य– जगत् की सर्वोत्तम मानी जाने वाली श्रीभगवद्गीता भी सप्तशती ही है।

तान्त्रिकों ने "दुर्गा-सप्तशती के" विभिन्न मन्त्रों से तथा अन्यान्य अनेक मन्त्रों से सम्पुटित पाठ विधि से अनेक कार्यों की सिद्धि का उल्लेख किया है और जो आज भी हमारी श्रद्धा और हमारे अटूट विश्वास के कारण लक्ष लक्ष जन की मनःकामना प्रतिक्षण पूरी कर रहे हैं। दुर्गा सप्तशती का एक साधारण पाठ जो साधारण जन समुदाय में प्रचलित ही है। पर, इसमें विशेष पाठ भी है जैसा कि इस मन्त्र प्रतिलोम दूर्गा सप्तशती के विषय में निम्न-लिखित श्लोक से प्रकट है।

"अन्त्याद्यार्क द्वि रुद्र त्रि, दिगब्ध्यंङ्केष्विभर्तवः।
अश्वोऽश्व इति सर्गानां, शापोद्धारोह्यनुक्रम ः॥"
(गुप्तवत्यां दुर्गा प्रदीपे)

इस श्लोक का अर्थ समझाने के पूर्व हम ऊपर के श्लोकार्ध का खण्ड कर देना चाहते हैं, जिस से पाठकों को उसे समझने में सरलता हो। अन्त्य (अन्तिम तेरहवाँ अध्याय), आद्य (प्रथम अध्याय) अर्क (बारहवाँ) द्वि (दूसरा) रुद्र (ग्यारहवां) त्रि (तीसरा), दिग् (दशम) अब्धि (चौथा) अङ्क (नवाँ) इषु (पाँचवाँ) इभ (आठवाँ) ऋतु (छठाँ) तथा— अश्वः अश्वः अर्थात् सातवाँ २॥

अर्थात् तेरहवाँ और प्रथम अध्याय के विलोम और अनुलोम पाठ साथ-साथ करने पड़ेंगे। इसी प्रकार बारह और द्वितीय अध्याय, एकादश तथा तृतीय, दशम तथा चतुर्थ, नवम तथा पंचम, अष्टम तथा षष्ठ और सप्तम तथा सप्तम अध्याय के पाठ क्रमशः विलोम और अनुलोम करते हुए संयुक्त रूप से करने चाहिये। यही शापोद्धार का अनुक्रम है।

"शीघ्र सिद्धि प्रदः पाठः प्रशस्तः सर्व कर्मसु"

यह पाठ शीघ्र सिद्धि देने वाला है और सभी कार्यों में प्रशंसनीय है। उक्त प्रकार का पाठ अपनी एक बहुत बड़ी विशेषता इस बात के लिए हुए है कि इसका एक पाठ साधारण दश पाठों के बराबर माना गया है।

इस पाठ को देखकर साधारण जन समुदाय भ्रम में पड़ जाता है और घबरा उठता है तब, जब देखता है कि एक श्लोक तेरहवें अध्याय के अन्त का है और एक प्रथमोऽध्याय के प्रारम्भ का और तब उसके आश्चर्य का ठिकाना

नहीं रहता जब वह और आगे बढ़ता है। इसी प्रकार अंग न्यास और करन्यास दोनों ही भिन्न व्यापार हैं, पर इसमें दोनों का ही एकीकरण किया गया है। इस बात से भी बहुत से जन भौंचक्के रह जाते हैं। पर आश्चर्य-चकित होने की कोई बात नहीं। श्रद्धा और विश्वास का सम्बल लेकर आप कम्बल पर बैठ उस महिष-मर्दिनी का, उस महामहिमामयी का साश्चर्य अजनित कार्य-कलाप का क्षण क्षण निरीक्षण करने की शक्ति से मुक्त शनैः शनैः अपने इन चर्म चक्षुओं को दिव्यचक्षु के रूप में परिणत होते पाइयेगा।

जिसकी कृपा कटाक्ष से क्षणमात्र में अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना हो सकती है जिसकी भ्रूभंग से ही जगत् का विनाश अवश्यम्भावी हो, उस सर्वाश्चर्य मयी देवी की आराधना में, उसकी पूजा में हमारे इन पूर्वजों ने, जिन्होंने इन्हीं तन्त्रों के बल पर विलक्षण शक्तियाँ प्राप्त की हैं, इस प्रकार पाठ करने का क्रम रखा तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? 'मन्त्र प्रतिलोम दुर्गा सप्तशती' के पाठ से घबड़ाने की बात कैसी ?

प्रतिलोम शब्द से ही प्रकट है कि इसमें कुछ उलटी सीधी बातें होगीं।

इस पाठ के अतिरिक्त 'उपासना कल्प तरु' 'तथा कात्यायनी तन्त्र' नामक दोनों ग्रन्थों में तीन प्रकार के और पाठों के करने का विधान है :–

(१) अनुलोमं विलोमं च, लयनुलोमं पुनः पठेत्।
शीघ्रसिद्धिद पाठोऽयं, सर्व-कार्य-प्रसाधकः॥

प्रथम अनुलोम फिर विलोम तथा पुनः अनुलोम पाठ करने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है और वह सभी कार्यों का प्रसाधक होता है।

(२) अनुलोमं विलोमं च, शुम्भ दैत्य वधावधिः।
अनुलोमं च शेषंतु, विपरीतं पठेत् पुनः॥

शुंभ दैत्य वध अर्थात् दशम अध्याय तक अनुलोम पाठ करने के अनन्तर वहीं से विलोम पाठ अर्थात् दशम अध्याय से प्रथम अध्याय तक उलटा पाठ करके शेष अर्थात् एकादश अध्याय से त्रयोदश अध्याय तक अनुलोम पाठ करने के अन्तर पुनः तेरह से एकादश तक विलोम पाठ करना चाहिये।

पुनः प्रत्यहं नवचण्डी पाठ क्रमः (फिर प्रतिदिन के नव चण्डी पाठ का क्रम)

अनुलोमं विलोमं च शापोद्धार क्रमं पठेत्।
प्रत्यहं चण्डिका पाठं, नवचण्डी विधौ स्मृतम्॥

पहले अनुलोम तथा विलोम पाठ करने के अनन्तर शापोद्धार का पाठ करें? पाठ में पाणिनीय शिक्षा के इस आदेश की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है :—

माधुर्यमक्षर व्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्य्य लय समर्थं च षडेते पाठका गुणाः॥

मधुरता, अक्षरों का स्पष्ट उच्चारण, पदों का विच्छेद, सुस्वर, धीरता तथा लय युक्त पाठ करना पाठ में गुण माना गया है।

हमारे शास्त्रकारों ने गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर माना है, पर इससे हमें आश्चर्य-चकित होने की बात इस लिये नहीं परिलक्षित होती है कि त्रिदेव साकार हैं।

महान् आश्चर्य की बात तो तब लगती है, जब "गुरुः साक्षात्परब्रह्म" गुरु साक्षात् परब्रह्म स्वरूप कर निराकार भी स्वीकार किया जाता है। अर्थात् यह गुरु भी महामहिमा शाली और महान् अश्चर्यमय ही है। इसलिये सन्तों ने गुरु की महान् आवश्यकता बतलायी है।

जो सज्जन दूर न जाकर निकट ही सब कुछ जान लेना चाहते हैं, वे उस सर्वदा (सब कुछ देने वाली) को ही सर्वदा के लिए स्वीकार कर लें और इस पुस्तक में लिखी हुई विधि के अनुसार पाठ आरम्भ करें। तीन वर्ष तक प्रतिदिन पाठ कर लेने के बाद "जगदम्बार्पणमस्तु" कह पाठ का सारा फल उस महामाया को ही अर्पित कर देना चाहिए। इस निष्काम कंर्म के प्रतिफल स्वरूप संभव है कि वह महादेवी आप की परीक्षायें लें और आप उसमें सफल हों तब आप देखें अपना चमत्कार!!!

और, वस्तुतः वह अकथ्य है, वह अवर्ण्य है, वह अपने आप की वस्तु है।

आपका

पं ठाकुर प्रसाद त्रिपाठी

व्याकरण पुराणेतिहाणाचार्य

अथ अपराजिता प्रयोग प्रारंभः



अपराजिता देवी का प्रमाण कवच में ही आया है।

भक्त जन इसे समझ लें।

ॐ नमोऽपराजितायै।

श्री मद्[२] अपराजिता महामंत्र॥ ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कलिकुण्ड स्वामिनी। अप्रतिचक्रे जये विजये अपराजिते अमुकं जृम्भय मोहय स्वाहा।

इति पंचत्रिंशाक्षरी मोहिनी विद्या।

(यह ३५ अक्षर का मोहिनी मंत्र है। इसके ऋषि इत्यादि नहीं है)

न ध्यानं न जपश्चास्याः सिद्धि विद्या महा मनोः। स्मरणादेव सर्वेषां सर्व सिद्धि प्रदा सदा। राजसद्मनि संग्रामे सभायां प्राण संकटे। द्यूते विद्या प्रयोगे च जय लक्ष्मी प्रदो मनुः॥ एकविंशतिवारानि यो जपं कुर्यात् विचक्षणः। मंत्रस्य सर्वकार्येषु

तस्य वश्यं जगत्रयम्। (इस मंत्र को २१ बार जपने से और उपरोक्त तीनों श्लोंकों का पाठ करने से भक्त जिसे चाहे उसे अपने वश में कर सकता है।

✪ अथ द्वितीय प्रयोगः ✪

ॐ अस्या वैष्णव्याः पराया अजिताया महाविद्यायाः वामदेव वृहस्पति मार्कन्डेया ऋषयः गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् वृहती छन्दांसि- लक्ष्मीनृसिंहो देवता – ॐ क्लीं श्रीं ह्रीं बीजानि – हुँ शक्तिः सकल कामना सिद्ध्यूर्थम् श्री अपराजिता विद्या मंत्र पाठे विनियोगः।

✪ अथ ध्यानम् ✪

ॐ नीलोत्पल-दल-श्यामां भुजंङ्गाभरणान्विताम्। शुद्ध स्फटिक संकाशां – चन्द्र कोटि निभाननाम् ॥१॥ शंख चक्र धरां देवीं-वैष्णवीमपराजिताम्। वालेन्दु शेषरां देवीं-वरदाभय दायिनीम् ॥२॥ नमस्कृत्य प्रपाठैना – मार्कन्डेयो महातपाः॥

✪ मार्कण्डेय उवाच ✪

शृणुध्वं मुनयः सर्वे सर्वकामार्थ सिद्धिदाम् ॥३॥ असिद्ध साधिनीदेवीं-वैष्णवीमपराजिताम् ॥ ॐ नमो नारायणाय। ॐ नमो

भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमोऽस्त्वनताय सहस्रशीर्षाय, क्षीरोदार्णव शायिने, शेषभोग पर्यंकाय, गरुड़ वाहनाय, अमोघाय-अजाय-अजिताय पीतवाससे। ॐ वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध हयग्रीवमत्स्य-कूर्म बाराह-नृसिंह-अच्युत-वामन-त्रिविक्रम-श्रीधर-राम, राम, राम, वरद-वरद वरदोभव नमोऽस्तुते-नमोऽस्तुते नमोऽस्तुते स्वाहा॥

ॐ असुर, दैत्य, दानव, यक्ष-राक्षस-भूत-प्रेत-पिशाच-कूष्माण्ड सिद्ध योगिनी - डाकिनी - शाकिनी - स्कन्दग्रहान्-उपग्रहान्नक्षत्रग्रहांश्चाऽन्यान् हनहन-पचपच-मथमथ-विध्वंसय-बिध्वंसय, विद्रावय, विद्रावय-चूर्णय-चूर्णय-शङ्खेन-चक्रेण-वज्रेण-शूलेन-गदया-मुसलेन-हलेन, भस्मी कुरु कुरु स्वाहा॥

ॐ सहस्रवाहो-सहस्र प्रहरणायुध-जय जय विजय विजय-अजित-अमित-अपराजित अप्रतिहत-सहस्रनेत्र-ज्वल ज्वल-प्रज्वल प्रज्वल, विश्वरूप - बहुरूप - मधुसूदन, महावराह - महापुरुष - वैकुण्ठ-नारायण, पद्मनाभ गोविन्द - दामोदर - ऋषिकेश- केशव-सर्वासुरोत्सादन-सर्वभूत-वशङ्कर- सर्व - दुःखस्वप्नप्रभेदन, सर्वयंत्र प्रभंजन-सर्वनाग विमर्दन सर्वदेव-महेश्वर-सर्वबंधनविमोक्षण-सर्वाहित प्रमर्दन-सर्वज्वरप्रणाशनसर्वग्रह-निवारण-सर्व-पाप प्रशमन-जनार्दन नमोऽस्तुते स्वाहा॥

✪ अस्यफलम् ✪

विष्णोरियमनुप्रोक्ता, सर्वकाम फल प्रदा, सर्वसौभाग्य जननी, सर्व भीति विनाशिनी ॥१॥ सर्वैश्च पठिता सिद्धैर्विष्णोः-परम बल्लभा। नाऽनया सदृशं किंचिद्दुष्टानांनाशनंपरम् ॥२॥ विद्या रहस्या कथिता वैष्णव्येषाऽपराजिता। पठनीया प्रशस्ता वा, साक्षात् सत्वगुणाश्रया॥ ॐ शुक्लाम्बर धरं विष्णुं, शशि वर्णं चतुर्भुजम्। प्रसन्न वदनं ध्यायेत्-सर्व विघ्नोपशान्तये॥ अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि, ह्यभयामपराजिताम्। या शक्तिर्मामकी वत्स! रजो गुण मयीमता॥ सर्व सत्वमयी साक्षात्, सर्वमंत्रमयी च या। यास्मृता पूजिताजप्ता न्यस्ता कर्माणियोजिता॥ सर्व कामदुघा वत्स, श्रृणुष्वै तां ब्रवीमि ते। (य इमामपराजितां परम वैष्णवीमप्रतिहतां पठति, सिद्धां स्मरतिसिद्धां, महाविद्यां जपति पठति शृणोति, स्मरति, धारयति, कीर्तयति वा, नतस्याऽग्नि, वायु वज्रोपलाऽशनि वर्षभयं न समुद्रभयं, न ग्रहभयं, न चौरभयं, न शत्रु-भयं, न श्वापद भयं, वा भवेत्॥ क्वचिद्रात्र्यन्धकार स्त्री-राजकुलविद्वेषि-बिषोपविष गरः गरद वशीकरण, विद्वेषणोच्चाटन, वध वध बंधन भयं वा न भवेत्॥)

✪ अथ तृतीय प्रयोग ✪

एतैर्मन्त्ररुदाहृतैः सिद्धै संसिद्ध पूजितैः।

ॐ नमोऽस्तुते॥ अभये, अनघे, अजिते, अमिते, अमृते, अपरे अपराजिते, पठितसिद्धे, जपितसिद्धे, स्मरितसिद्धे, एकोनाशीतितमे-एकाकिनि; निश्चेतसि, सुद्रुमें; सुगंधे, एकान्नंशे, उमे, ध्रुवे, अरुन्धति, गायत्रि, सावित्रि, जातवेदसि, मानस्तोके, सरस्वति, धरणि, धारिणि, सौदामनि, अदिति, दिति, विनते, गौरि, गांधारि, मातंगि, कृष्णे, यशोदे; सत्यवादिनि; ब्रह्मवादिनि; कालि कपालिनि; कराल-नेत्रे; भद्रेः; निद्रे; सत्योपयाचनकरी; स्थल गतं, जलगतं; अन्तरिक्षगतं वा मां रक्ष सर्व भूतभयोपद्रवेभ्यः स्वाहा।

✪ अस्यमाहात्म्यम् ✪

यस्याः प्रणश्यते पुष्पं गर्भो वा पतते यदि। म्रियते बालको यस्याः काकवन्ध्या च या भवेत्॥१॥ धार येद्या इमां विद्या मेतैर्दोषैर्न-लिप्यते॥ गर्भिणी, जीववत्सा स्यात्पुत्रिणी स्यान्न संशयः॥२॥ भूर्जपत्रे त्विमांविद्या लिखित्वा गंधचन्दनैः। एंतैर्दोषैर्नलिप्येत सुभगा-पुत्रिणी भवेत्॥३॥ रणे राजकुले द्यूते, नित्यंतस्य जयो भवेत्॥ शस्त्रंवारयतेह्येषां समरे काण्डदारुणे॥४॥

गुल्म शूलाक्षि रोगाणां; क्षिप्रंनाशयति व्यथाम् ।। शिरोरोग ज्वराणांच; नाशिनी सर्वदेहिनाम् ।। ५ ।। इत्येता कथिताविद्या अभयारव्याऽपराजिता ।। एतस्याः स्मृति मात्रेण भयं क्वापि न जायते ।। ६ ।। नोपसर्गा न रोगाश्च, नयोधानापि तस्करः। न राजानो न सर्पाश्च न द्वेष्टारो न शत्रवः ।। ७ ।। यक्ष राक्षस बेताला नशांकिन्यो नचग्रहा ।। अग्नेर्भयंन वाताच्च न समुद्रान्नवै विषात् ।। ८ ।। कार्मणंवा शत्रुकृत् वशीकरणमेवच। उच्चाटनं स्तम्भनं च विद्वेषण मथापि वा ।। ९ ।। न किंचित् प्रभवेत् तत्र यत्रैषा वर्ततेऽभया। पठेत् वा यदि वा चित्रे पुस्तके वा मुखेऽथवा ।। १० ।। हृदि वा द्वार देशे वा वर्तते ह्यभयः पुमान्। हृदये विन्यसेदेतां ध्यादेद्देवीं चतुर्भुजाम् ।। ११ ।। रक्त माल्याम्वरधरां पद्मराग समप्रभाम् । पाशांऽकुशाऽभयवरै रलंकृतसुविग्रहाम् ।। १२ ।। साधकेभ्यः प्रयच्छन्तीं मंत्रवर्णामृतान्यपि। नाऽतः परतरं किंचिद् वशीकरण मुत्तमम् ।। १३ ।। रक्षणं पावनंचापि नाऽत्र कार्या विचारणा। प्रातः कुमारिकाः पूज्याः खाद्यैराभरणै रपि ।। १४ ।। तदिदं वाचनीयं स्यात् तत्प्रीत्या प्रीयते तु माम्।

✪ अथ चतुर्थ प्रयोगः ✪

ॐ अथातः सम्प्रवक्ष्याम्, विद्यामपि महाबलाम्। सर्व दुष्ट प्रशमनी सर्व शत्रु क्षयं करीम् ।। १ ।। दारिद्रय-दुःख-शमनी-दौर्भाग्य

व्याधि नाशिनीम् । भूत प्रेत पिशाचानां यक्ष गन्धर्व राक्षसाम् ॥ २ ॥ डाकिनी शाकिनी स्कंद कूष्माण्डानां च नाशिनीम् । महारौद्रीं महा शक्तिं सद्यः प्रत्यय कारिणीम् ॥ ३ ॥ गोपनीयं प्रयत्नेन सर्वस्वं पार्वती पतेः । तामहंते प्रवक्ष्यामि-सावधान मना शृणु ॥ ४ ॥ एकाह्निकं द्वयाह्निकं चातुर्थिकार्द्ध मासिकम् । द्वैमासिकं त्रैमासिकं तथा चातुर्मासिकं ॥ ५ ॥ पंचमासिकं पाण्षासिकं वातिकं पैत्तिकं ज्वरम् । श्लैष्मिकं सान्निपातिकं तथैव सतत-ज्वरम् ॥ ६ ॥ मौहूर्तिकं पैतिकं शीत ज्वर विषम ज्वरम् । द्वयह्निकं त्र्यह्निकं चैव ज्वरमेकाह्निकं तथा ॥ ७ ॥ क्षिप्रं नाशयते नित्यं स्मरणादपराजिताम् ॥

✪ मंत्रः ✪

ॐ ह्रीं हन-हन कालि, शर शर गौरि धम धम विद्ये आले ताले माले गंधे वंधे पच पच विद्ये नाशय नाशय पापं हर हर संहारय वदुःस्वप्न, विनाशिनी कमलस्थितः विनायकमातः रजनि सन्ध्ये दुंदुभि नादे मानस वेगे, शंखिनि, चक्रिणि, गदिनि, वाज्रणि, शूलिनि, अपमृत्यु विनाशिनि, विश्वेश्वरी, द्रविड़ि, द्राविड़ि, द्रविणि, द्राविणि, केशवदयिते, पशुपति सहिते, दुंदुभि दमनि, दुर्मद दमनि, शवरिकिरात्ति-मातंगि। ॐ ह्रुं ह्रुं ज्रुं ज्रुं क्रुं क्रुं तुरु तुरु ॐ ह्रुं कुरु कुरु ॥

ये मांद्विषन्ति प्रत्यक्षं परोक्षं वा तान् सर्वान् दम् दम्, मर्दय-मर्दय, तापय तापय, गोपय-गोपय, पातय पातय, शोषय शोषय, उत्सादय उत्सादय, ब्रह्माणि, वैष्णवि, माहेश्वरि, कौमारि, वाराहि, नारसिंहि, ऐं द्रिचामुंडे, महालक्ष्मी, वैनायिकि, औपेन्द्रि, आग्नेयि, चंडि, चामुण्डे, वारुणि, वायव्ये, नैऋति, सौम्ये, ऐशानि, उर्ध्वमधोरक्षप्रचण्डविद्ये इन्द्रोपेन्द्र भगिनी। ॐ नमो देवि जये विजये शान्ति स्वस्ति तुष्टि पुष्टि विवर्द्धिनी। कामांकुशे कामदुधेघे सर्व काम वरप्रदे। सर्व भूतेषु मां प्रियं कुरु कुरु स्वाहा आकर्षणि आवेशनि॥ ज्वाला मालिनि रमणि रामणि धरणि धारणि तपनि तापनि मदनि मादनि शोषणि सम्मोहनि नीलपताके महानीले महागौरि महाश्रिये। महा चांद्रि महा सौरि महामायूरि, आदित्यरस्मि, जाह्नवि। यमघंटे किणि किणि चिंतामणि सुगंधे सुरभे, सुराऽसुरोत्पन्ने सर्व काम दुधे यद्यथामनीप्सितं कार्य तन्मम सिध्यतु स्वाहा। ॐ स्वाहा। ॐ भूः स्वाहा। ॐ भुवः स्वाहाः। ॐस्वः स्वाहा। ॐ महः स्वाहा। ॐ जनः स्वाहा। ॐ तपः स्वाहा। ॐ सत्यम् स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा॥ यत एवागतं पापं तत्रैव प्रतिगच्छतु स्वाहेत्योम्।

अमोघैषा महाविद्या वैष्णवी चापराजिता। स्वयं विष्णु

प्रणीता च सिद्धेयं पाठतः सदा ॥ १ ॥ एषामहाबलानाम
कथितातेऽपराजिताम् । नानया सदृशी रक्षा त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
तमोगुणमयी साक्षाद्रौद्री शक्तिरियंमता । कृन्तातोऽपियतो
भीतः पादमूले व्यवस्थितः ॥ ३ ॥ मूलाधारे न्यसेदेतां रात्रावेनां
च संस्मरेत् । नीलजीमूत संकाशां तड़ित्कपिल केशिकाम् ॥ ४ ॥
उद्यदादित्य संकाशां नेत्रत्रयं विराजिताम् । शक्तिं त्रिशूलं शखं
च । पानपत्रं च विभ्रतीम् ॥ ५ ॥ व्याघ्रचर्म परी धाना किंकिणी
जालमंडिताम् । धावन्तीं गगनस्यान्तः पादुकाहित पादकाम् ॥ ६ ॥
दंष्ट्रांकरालवदनां व्यालकुंडल भूषिताम् । व्यात्तवक्त्रां
लाल-जिह्वां भृकुटीकुटिलालकाम् ॥ ७ ॥ स्वभक्त द्वेषिणां रक्तं
पिंबतीं पान पात्रतः । सप्तधातून् शोषयन्तीं क्रूर दृष्ट्याविष्ट्-
विलोकनात् ॥ ८ ॥ त्रिशूलेन च तज्जिह्वां कीलयंती मुर्हु र्मुहुः ।
पाशेनवद्धवा तं साध्य मानयन्ती तदंतिके ॥ ९ ॥ अर्धरात्रस्य
समये देवीं ध्यायेन्महावलाम् । यस्ययस्यवदन्नाम जपेन्मंत्रं
निशान्तके ॥ १० ॥ तस्य तस्य तथावस्था कुरुते सोऽपि
योगिनी । ॐ वले महावले असिद्ध साधनी स्वाहेत्योम् । अमोघां
पठित सिद्धां श्रीवैष्णवीं श्री मदपराजितविद्यां ध्यायेत् ॥
दुःस्वप्ने दुररिष्टे च; दुर्निमित्ते तथैव च। व्यहारे भवेत्सिद्धिः
पठेद्विघ्नोपशान्तये ।

★ इति श्रीअपराजिता प्रयोगसमाप्ताः ★

यदत्र पाठे जगदंबिके मया विसर्ग विन्दुक्षर हीनमीरितम् ।
तदस्तु संम्पूर्णतमं प्रयान्तु में, संकल्पसिंद्धिश्च सदैव जायताम् ॥

भाद्र कृष्णा १० सं० २००२ वि०

✪ आरती श्री विन्ध्यवासिनी जी की ✪

आरति श्री विन्ध्यवासिनी की। शुद्ध बुद्धि गुण विकाशिनी की। यशोदा सुता भक्त मन रंजनि। सकल पाप त्रय ताप विभंजिनि ॥ काम क्रोध ममता मद गंजिनि। तत्व ज्ञान पर प्रकाशिनी की ॥ आरती श्री विन्ध्यवासिनी की ॥ विश्वोत्पत्ति स्थितिलयकारिणि। स्वाहा स्वधा चरा-चर धारिणि। दुष्ट निशुम्भ, शुम्भ संहारिणि। रक्त वीज खल विनाशनीकी ॥ आरती०॥ अमित अनाथन आश्रय दाता। पूजत जेहि हर विष्णु विधाता ॥ जगज्जया जननी जगमाता। निज इच्छा बल विलाशनी की ॥ आरति०॥ निगमागम पुराण अष्टादश। नेतिनेति बरणत जेहि को यश ॥ अवध विहारी को धन सरबस। कृपायुक्त मृदु सुहाशिनीकी ॥ आरति०॥ १॥

✪ श्री दुर्गा सप्तशती की आरती ✪

आरती श्री सप्तशतीकी । ज्ञान खानि दाता सुगती की ॥

मार्कन्डेय ग्रथित अति सुन्दर। मेधा तिथिवरणित कीरति वर॥ वैश्य समाधि सुरथ भूपति कर। शक्ति चरित माता सुमती की॥ आरती श्री॥ कवच कील अरगला सुहावन। सूक्त रहस्य अनूपम पावन॥ त्रयोदशाध्याई मन भावन। आश्रय सकल गृहस्थ यती की॥आरती श्री०॥ तीनहुँ चरित वेद सुर छंदा। शक्ति बीज सह तत्वानंदा॥ न्यास करत कलि कलुष निकंदा। ऋषिविधि हरि अरु उमापति की॥ आरती श्री ०॥ पढ़त होत भगवति अनुकूला॥ विनशत सब संकट सह मूला॥ अवध विहारी भव में भूला॥ आश्रय दो हरि चरणरती की॥ आरती श्री० ॥

अथ मंत्र प्रतिलोम दुर्गा सप्तशती पाठ-विधिः। प्रातः कालीन संध्योपासनादि से निवृत होकर कवच, अर्गला, कीलक का पाठ करके नवार्ण, न्यास और जप करके 'रात्रिसूक्त' का पाठ करे, तब विनियोग करे।

ॐ अस्य श्री विलोम अनुलोम सहित सप्तशती उत्तम प्रथम मध्यम चरितस्य रुद्र, ब्रह्म, विष्णु ऋषयः श्री सरस्वती महाकाली महालक्ष्मी देवताः अनुष्टुप गायत्री त्रिष्टुप्छन्दांसि भीमा नन्दा शाकम्भरी शक्तयः भ्रामरी रक्त दन्तिका दुर्गा वीजानि सूर्याग्नि वायुस्तत्वानि साम ऋग्यजुर्वेदाध्यानानि ॐ अद्य अमुक गोत्र

अमुक शर्म्माहम् आत्मनः सकल कामना संसिध्यर्थम् श्री सरस्वती महाकाली महालक्ष्मी देवता प्रीत्यर्थे विलोम - अनुलोम सहित सप्तशती पाठे विनियोगः॥ १॥

✪ अथ कर-न्यासः ✪

सर्वस्वरूपे सर्वेशे१ अरत्राय फट् करतल कर पृष्टाभ्यां नमः। खड्गिनी शूलिनी घोरा० हृदयाय नमः। अंगुष्टाभ्यां नमः। खड्गशूलगदादीनि९ नेत्रत्रयाय वौषट्। कनिष्टिकाभ्यां नमः। शूलेन पाहिनों देवि, सिरसे स्वाहा। तर्जनीभ्यां नमः। सौम्यानि यानि रुपाणि९ कवचायहुं अनामिकभ्यां नमः। प्रच्यां रक्ष प्रतीच्यां च९ शिखायै वषट्। मध्यमाभ्यां नमः।

✪ अथ ध्यानम् ✪

घण्टाशूल हलानि १ खड्ग चक्रगदेषु २ अक्षस्त्रक्परशुं॥ ३॥

इस क्रमसे इन सब कार्यों से निवृत्त होकर तब पाठ प्रारंभ करे। पाठान्ते देवी सूक्तं नवार्णजपं रहस्यं च पठेत्।

इस जगह यदि किसी यजमान का पाठ करना है तो इस जगह उसी यजमान का नाम्न और गोत्र की योजना करें।

★ इतिशम् ★

* अथ *

मंत्रप्रतिलोम दुर्गासप्तशती

॥ प्रारम्भ ॥

* श्रीगणेशाय नमः *

नित्य कर्म कृत्वा ध्यान पूर्वकं दुर्गार्चनं कुर्यात् ॥ कवचाऽर्गलाकीलकं पठेत् नवार्ण मंत्र न्यास पूर्वकं जपेत् ॥ रात्रिसूक्तं पठेत् शापोद्धार उत्कीलनं कृत्वा ततः प्रत्यहं नव चण्डी पाठं अनु लोम विलोम मंत्रे प्रति लोम पाठ क्रमः ॥१॥

ॐ सावर्णिर्भविता मनुः ॥१॥ मार्कण्डेय उवाच ॥२॥ एवंदेव्या वरं लव्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः

सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णि-
र्भविता मनुः ॥ ३ ॥ सावर्णिस्सूर्य-
तनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद्गद-
तो मम ॥ ४ ॥ इति दत्त्वा तयोर्देवी
यथाभिलषितं वरम् । बभूवान्तर्हिता
सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ॥ ५ ॥
महामायानुभावेन यथा मन्वन्तरा-
धिपः ॥ स बभूव महाभागः साव-
र्णिस्तनयो रवेः ॥ ६ ॥ मार्कण्डेय

उवाच ॥७॥ स्वारोचिषेन्तरे-
पूर्वंचैत्रवंशसमुद्भवः। सुरथोनाम
राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले ॥८॥
तम्प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं-
भविष्यति ॥९॥ तस्यपालयतः
सम्यक्प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
बभूवुःशत्रवोभूपाः कोलाविध्वं-
सिनस्तदा ॥१०॥ वैश्यवर्यत्वया
यश्चवरोऽस्मत्तोऽभिवांछितः ॥११॥
तस्यतैरभवद्युद्धमतिप्रवल दण्डिनः ॥

न्यूनैरपिसतैर्युद्धेकोलाविध्वंसिभि -
र्जितः ॥ १२ ॥ सावर्णिको
नाममनुर्भवान् भुविभविष्यति
॥१३॥ ततः स्वपुरमायातो निज
देशाधिपोऽभवत् ॥ आक्रान्त-
स्समहाभागस्तैस्तदा प्रवलारिभिः
॥ १४ ॥ मृतश्चभूयः सम्प्राप्य जन्म
देवाद्विवस्वतः ॥ १५ ॥ अमात्यैर्वलि-
भिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः ॥
कोशोवलंचापहृतन्तत्रापिस्वपुरे-

ततः॥१६॥ हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति॥१७॥ ततोमृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः सभूपतिः एकाकी हयमारूह्य जगाम गहनं-वनम्॥१८॥ स्वल्पैरहोभिर्नृपते-स्वंराज्यं प्राप्स्यते भवान्॥१९॥ स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य-मेधसः। प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनि-शिष्योपशोभितम्॥२०॥ देव्युवाच॥२१॥ तस्थौ कंचित्सकालंच

मुनिना तेन सत्कृतः, इतश्चेतश्च
विचरंस्तस्मिन् मुनिवराश्रमे ॥ २२॥
सोऽपिवैश्यस्ततो ज्ञानं वब्रे निर्वि-
ण्णमानसः ममेत्यहमिति प्राज्ञः
सङ्गविच्युतिकारकम् ॥ २३॥
सोऽचिन्तयत्तदातत्र ममत्वाकृष्ट
चेतनः! मत्पूर्वैः पालितम्पूर्वं मयाहीनं
पुरं हि तत् ॥ २४॥ ततो बब्रे नृपो
राज्यंमविभ्रंश्यन्यजन्मनि अत्रैव च
निजं राज्यं हत शत्रुबलं

बलात् ॥२५॥ मद्भृत्यैस्तैरसद्-
वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा, न जाने
स प्रधानो मे शूरहस्तीसदामदः॥२६॥
मार्कण्डेय उवाच ॥२७॥ ममवैरिवशं
यातः कान्भोगानुपलप्स्यते, ये
ममानुगतानित्यं प्रसादधनभोजनैः
॥२८॥ यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया
च कुल नन्दन, मत्तस्तत्प्राप्यतां
सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥२९॥
अनुवृत्तिं ध्रुवन्तेऽद्य कुर्वन्त्यन्य

महीभृताम्, असम्यग्व्ययशीलै-
स्तैकुर्वद्भिः सततंव्ययम् ॥ ३० ॥
देव्युवाच ॥ ३१ ॥ संचितःसोऽति
दुःखेन क्षयंकोशो गमिष्यति ।
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास
पार्थिवः ॥ ३२ ॥ परितुष्टा जगद्धात्री
प्रत्यक्षंप्राहचण्डिका ॥ ३३ ॥ तत्र
विप्राश्रमाभ्यासे वैश्यमेकं ददर्श सः,
सपृष्टस्तेन कस्त्वंभोहेतुश्चाग-
मनेऽत्र कः ॥ ३४ ॥ ददतुस्तौ वलिं-

चैव निजगात्रासृग्गुक्षितम् । एवं
समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनो
॥ ३ ५ ॥ सशोक इवकस्मात्त्वं दुर्मना
इवलक्ष्यसे । इत्याकर्ण्य वचस्तस्य
भूपतेः प्रणयोदितम् ॥ ३ ६ ॥ अर्हणां
चक्रतुस्तस्याःपुष्प धूपाग्नितर्प्पणैः ॥
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ
समाहितौ ॥ ३ ७ ॥ प्रत्युवाच स तं
वैश्यः प्रश्रयावनतोनृपम् ॥ ३ ८ ॥
स च वैश्यस्तपस्तेपे देवी सूक्तंपरं

जपन् ॥ तौ तस्मिन्पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिम्महीमयीम् ॥ ३९॥ वैश्यउवाच ॥४०॥ जगामसद्य-स्तपसे स च वैश्यो महामुने ॥ सन्दर्शनार्थमम्बाया नदी पुलिन संस्थितः ॥४१॥ समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पनो धनिनांकुले ॥४२॥ प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं संशित ब्रतम् ॥ निर्विण्णोति ममत्वेन राज्यापहरणेनच ॥४३॥ पुत्रदा-

रैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय
मे धनम्॥ ४४॥ इतितस्यवच श्रुत्वा
सुरथः स नराधिपः ॥ ४५॥ वनम-
भ्यागतोदुःखी निरस्तश्चाप्त
बन्धुभिः॥ सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां
कुशला कुशलात्मिकाम् ॥ ४६॥
मार्कण्डेयउवाच ॥ ४७॥ प्रवृतिं
स्वजनानां च दाराणांचात्र संस्थितः
क़िन्नु तेषां गृहेक्षेममक्षेमं किन्नु

साम्प्रतम् ॥४८॥ आराधिता सैवनृणांभोगस्वर्गापवर्गदा ॥४९॥ कथन्तोकिन्नुसद्वृत्ता: दुर्वृत्ता: किन्नुमे सुता: ॥५०॥ मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्तिचापरे। तामुपैहिमहाराजशरणं परमे-श्वरीम् ॥५१॥ राजोवाच ॥५२॥ विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णु मायया। तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिन: ॥५३॥

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदा-
रादिभिर्धनैः॥ ५४॥ एतत्ते कथितं
भूप देवी माहात्म्यमुत्तमम्।
एवंप्रभावासा देवी ययेदंधार्यते
जगत्॥ ५५॥ तेषु किम्भवतः
स्नेहमनुबध्नाति मानसम्॥ ५६॥
ऋषिरुवाच॥ ५७॥ वैश्य उवाच
॥ ५८॥ स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूप
गन्धादिभिस्तथा। ददाति वित्तं
पुत्रांश्च मतिंधर्मे गतिंशुभाम्

॥५९॥ एवमेतद्यथा प्राहभवा-
नस्मद्गतं वचः ॥६०॥ भवकालेनृणां
सैवलक्ष्मीर्बृद्धि प्रदागृहे। सैवाभावे
तथा लक्ष्मीर्विनाशायोपजायते
॥६१॥ किंकरोमि न बध्नाति मम नि
ष्ठुरताम्मनः। यैः संत्यज्यपितृस्नेहं
धनलुब्धैर्निराकृतः ॥६२॥
सैवकाले महामारी सैव सृष्टि-
र्भवत्यजा। स्थितिंकरोति भूतानां
सैवकाले सनातनी ॥६३॥ पति-

स्वजनहार्दंच हार्दितेष्वेवमेमनः। किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपिम-हामते ॥६४॥ व्याप्तंतयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर। महाकाल्या महाकाले महामारी स्वरूपया ॥६५॥ यत्प्रेमप्रवणं चित्तंवि गुणेष्वपि बन्धुषु। तेषां कृते मे निः श्वासोदौर्मनस्यं च जायते॥६६॥ तयैतन्मोह्यते विश्वंसैवविश्वं प्रसूयते। सा याचिता च विज्ञानं-

तुष्टा ऋद्धिंप्रयच्छति ॥६७॥
करोमि किं यन्नमनस्तेष्वप्रीतिषु
निष्ठुरम् ॥६८॥ एवंभगवतीदेवी
सा नित्यापि पुनः पुनः। सम्भूय
कुरुते भूप जगतः परिपालनम्
॥६९॥ मार्कण्डेय उवाच ॥
जगद्विध्वंसिनि तस्मिन्महो-
ग्रेऽतुलविक्रमे। निशुंभे च महावीर्ये
शेषाः पातालमाययुः ॥७१॥
ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिंसमु-

पस्थितौ ॥ ७२ ॥ यज्ञभाग भुजः
स्सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः। दैत्या
श्चदेव्याः निहतेशुंभे देवरिपौयुधि
॥ ७३ ॥ समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च
पार्थिव सत्तमः ॥ कृत्वातुतौ यथा-
न्याय्यं यथार्हन्तेन संविदम् ॥ ७४ ॥
पश्यतामेव देवानांतत्रैवांतरधीयत ॥
तेपिदेवानिरातंकास्स्वाधिकारान्य-
थापुरा ॥ ७५ ॥ उपविष्टौकथाः
काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥ ७६ ॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ॥ ७७॥ राजोवाच ॥ ७८॥ ऋषिरुवाच ॥ ७९॥ भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकंवद- स्व तत् ॥ ८०॥ दूरादेवपलायन्ते स्मरतश्चरितम्मम ॥ ८१॥ दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायततांविना ॥ ममत्वं गतराज्यस्यराज्याङ्गेष्व-खिलेष्वपि ॥ ८२॥ स्मरन्ममैतच्च-रितं नरो मुच्येतसंकटात् । मम प्रभा-

वातिसंहाद्यादस्यवो वैरिणस्तथा ॥८३॥ जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम। अयंचनिकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥८४॥ पतत्सुचापि शस्त्रेषु संग्रामेभृश-दारुणे। सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपिवा ॥८५॥ स्वज-नेनच संत्यक्तस्तेषु हार्दीतथाप्यति। एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्त दुःखि-तौ ॥८६॥ राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो

वध्योबन्ध गतोऽपिवा। आघू-
र्णितो वा वातेनास्थित: पोते म-
हार्णवे ॥८७॥ दृष्टदोषेऽपि विषये
ममत्वाकृष्ट मानसौ। तत्किमेत-
न्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि
॥८८॥ दस्युभिर्वावृतश्शून्ये गृही-
तोवापि शत्रुभि:। सिंहव्या-
घ्रानुयातोवा वने वा वनहस्तिभि:
॥८९॥ ममास्य च भवत्येषा
विवेकान्धस्य मूढ़ता ॥९०॥

ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभाम्मतिम् । अरण्ये प्रान्तरे वापिदावाग्नि परिवारितः ॥ ११ ॥ ऋषिरुवाच ॥ १२ ॥ तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतंभयं पुंसां नजायते । युष्माभिस्स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥ १३ ॥ ज्ञान-मस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषय गोचरे ॥ १४ ॥ रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मना कीर्तनं मम ॥ युद्धेषु चरितं

यन्मे दुष्ट दैत्य निबर्हणम् ॥९५॥
विषयश्च महाभाग याति चैवं
पृथक् पृथक्। दिवान्धाः प्राणिनः
केचिद्रात्रावंधास्तथापरे ॥९६॥
प्रीतिर्म्मेक्रियते सास्मिन्सकृदु
च्चरिते श्रुते। श्रुतं हरति पापानि
तथारोग्यम्प्रयच्छति ॥९७॥
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्य
दृष्टयः। ज्ञानिनो मनुजास्सत्यं
किन्नुते नहि केवलम् ॥९८॥

विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयै-
रहर्निशम् । अन्यैश्च विविधैर्भोगैः ।
प्रदानैर्वत्सरेणया ॥ ९९ ॥ यतोहि-
ज्ञानिनस्सर्वे पशुपक्षिमृगादयः ।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषांमृग-
पक्षिणाम् ॥ १०० ॥ सर्वं ममै-
तन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ।
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्त-
थोत्तमैः ॥ १०१ ॥ मनुष्याणां च
यत्तेषां तुल्यमन्यतथोभयोः ।

ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान्पतङ्गाञ्छा-
वचञ्चुषु ॥१०२॥ दुर्वृत्तानाम-
शेषाणां बलहानिकरंपरम् ।
रक्षोभूतपिशाचानां पटनादेव नाश-
नम् ॥१०३॥ कणमोक्षादृतान्मो-
हात्पीड्यमानानपि क्षुधा । मानुषाः
मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुता-
न्प्रति ॥१०४॥ बालग्रहाभिभूतानां
बालानां शान्तिकारकम् । संघात-
भेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम्

॥१०५॥ लोभात्प्रत्युपकारायनन्वे-
तान् किन्न पश्यसि। तथापि
ममतागर्तेमोहगर्ते निपातिताः
॥१०६॥ उपसर्गाः शमं यान्ति
ग्रहपीडाश्च दारुणाः। दुस्वप्नञ्च
नृभिदृष्टंसुस्वप्नमुपजायते ॥१०७॥
महामाया प्रभावेण संसारस्थिति-
कारिणा। तन्नात्र विस्मयः कार्यो
योगनिद्रा जगत्पतेः ॥१०८॥
शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्न-

दर्शने। ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥१०९॥ महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत्। ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥११०॥ रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते। नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यम्मम शृण्वताम् ॥१११॥ बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति। तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चरा-

चरम् ॥११२॥ श्रुत्वा ममैतन्मा-
हात्म्यं तथा चोत्पत्तय: शुभा: ।
पराक्रमञ्च युद्धेषु जायते निर्भय:
पुमान् ॥११३॥ सैषा प्रसन्ना
वरदा नृणाम्भवति मुक्तये। सा
विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सना-
तनी ॥११४॥ सर्वाबाधावि-
निर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वित: ।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न
संशय: ॥११५॥ संसारबन्धहेतुश्च

सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥ ११६ ॥
शरत्काले महापूजा क्रियते या च
वार्षिकी । तस्यान्ममैतन्माहात्म्यं
श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥ ११७॥
राजोवाच ॥ ११८॥ जानताजानता
वापि बलिपूजान्तथा कृताम् ।
प्रतीच्छिष्याम्यहम्प्रीत्यावन्हिहोमन्तथा-
कृताम् ॥ ११९॥ भगवन्काहि सा
देवी महामायेति याम्भवान्
॥१२०॥ बलिंप्रदाने पूजायाम-

ग्निकार्ये महोत्सवे। सर्वम्ममै-
तच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च॥
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मा
स्याश्चकिंद्विज॥ यत्प्रभावा च
सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा
॥१२२॥ यत्रैत्पठ्यते सम्यक्-
नित्यमायतनेमम॥ सदानतद्वि-
मोक्ष्यामि सान्निध्यंतत्रमेस्थितम्
॥१२३॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि
त्वत्तो ब्रह्मविदाम्बरं॥१२४॥ उप

सर्गानशेषांस्तुमहामारीसमुद्भवान् ।
तथात्रिविधमुत्पातम्माहात्म्यं शम-
येन्मम ॥१२५॥ ऋषिरुवाच
॥१२६॥ तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं
पठितव्यं समाहितैः। श्रोतव्यं च
सदाभक्त्या परं स्वस्त्ययनंहितत्
॥१२७॥ नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया
सर्वमिदं ततम् ॥१२८॥ शत्रु-
तोनभयंतस्य दस्युतोवानराजतः।
नशस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्संभ-

विष्यति ॥१२९॥ तथापि तत्समु-
त्पत्तिर्बहुधा श्रूयताम्मम ॥ देवा-
नाङ्कार्यसिध्यर्थमाविर्भवति सा यदा
॥१३०॥ नतेषां दुष्कृतंकिञ्चिद्-
दुष्कृतोत्था न चापदः। भविष्यति न
दारिद्र्यंन चैवेष्ट वियोजनम्
॥१३१॥ उत्पन्नेति तदालोके
सानित्याप्यभिधीयते। योगनिद्रां
यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते
॥१३२॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यांनव-

म्यांचैकचेतसः। श्रोष्यन्ति चैव ये
भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम्
॥१३३॥ आस्तीर्यशेषमभजत्क-
ल्पान्ते भगवान्प्रभुः। तदाद्वाव-
सुरौघोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ
॥१३४॥ मधुकैटभनाशंच
महिषासुर घातनम्। कीर्तयिष्यति-
येतद्वद्वधं शुभनिशुंभयोः॥१३५॥
विष्णुकर्णमलोद्भूतौहन्तुं ब्रह्माण-
मुद्यतौ। सनाभिकमले विष्णोः-

स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ॥१३६॥
एभिस्तवैश्चमां नित्यंस्तोष्यते यस्स-
माहितः। तस्याहं सकलां बाधां
शनायिष्याम्यसंशयम् ॥१३७॥
दृष्ट्वातावसुरौचोग्रौ प्रसुप्तंञ्च जना-
र्दनम् ।तुष्टाव योगनिद्रांतामेकाग्र-
हृदयस्थितः ॥१३८॥ देव्युवाच
॥१३९॥ बिबोधनार्थाय हरेर्हरि-
नेत्रकृतालयाम् । विश्वेश्वरीं
जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्

॥ १४० ॥ तदा-तदावतीर्याहं करिष्याम्यरि संक्षयम् ॥ १४१ ॥ निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ १४२ ॥ भ्रामरीति च मां लोकास्तदास्तोष्यन्ति सर्वदा । इत्थं यदा यदा बाधादानवोत्थाभविष्यति ॥ १४३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ १४४ ॥ तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वा संख्येय षट्पदम् । त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥ १४५ ॥ त्वं

स्वाहा त्वंस्वधात्वंहि वषट्कार स्वरात्मिका ॥ १४६ ॥ भीमादेवीति विख्यातं तन्मेनामभविष्यति । यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥ १४७॥ सुधात्वम-क्षरेनित्ये त्रिधामात्रात्मिकास्थिता । अर्द्धमात्रास्थिता नित्यायानुच्चार्या विशेषतः ॥१४८॥ रक्षांसिभक्ष-यिष्यामिमुनीनांत्राणकारणात् ॥ तदामांमुनयस्सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्र-

मूर्तयः ॥१४९॥ त्वमेवसंध्या
सावित्री त्वंदेविजननीपरा ॥ त्वयैत-
द्धार्यते सर्वं त्वयैतसृज्यते जगत्
॥१५०॥ दुर्गा देवीति विख्यातं
तन्मेनामभविष्यति । पुनश्चाहं यदा
भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥१५१॥
त्वयैतत्पाल्यतेदेवि त्वमत्स्यन्ते च
सर्वदा ॥ विसृष्टौ सृष्टि रूपात्वं-
स्थिति रूपा च पालने ॥१५२॥
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा

यास्याम्यहम्भुवि । तत्रैवचचवधि-
ष्यामिदुर्गमाख्यम्महासुरम् ॥ १५३ ॥
तथा संहृति रूपान्ते जगतोऽस्य जग-
न्मये । महाविद्या महामाया महामेधा
महास्मृतिः ॥ १५४ ॥ ततोहमखिलं
लोकमात्मदेहसमुद्भवैः । भरिष्यामि
सुराशाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥ १५५ ॥
महामोहा च भवती महादेवी महा-
सुरी । प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रय-
विभाविनी ॥ १५६ ॥ ततः शतेन

नेत्राणां निरीक्षिष्यामियन्मुनीन् ।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमीति
मां ततः ॥१५७॥ कालरात्रिर्महा-
रात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा । त्वं श्रीस्त्व-
मीश्वरीस्त्वं ह्रींस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा
॥१५८॥ भूयश्च शतवार्षिक्यामना-
वृष्ट्यामनम्भसि । मुनिभिः संस्तुता-
भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ॥१५९॥
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः
क्षान्तिरेवच । खड्गिनीशूलिनी घोरा

गदिनी चक्रिणी तथा ॥१६०॥
ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च
मानवाः। स्तुवन्तोव्याहरिष्यन्ति
सततं रक्तदन्तिकाम् ॥१६१॥
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरि-
घायुधा। सौम्या सौम्यतराशेषसौ-
म्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥१६२॥ भक्ष-
यन्त्याश्च तानुग्रान्वैप्रचित्तान्म-
हासुरान्। रक्तादन्ता भविष्यन्ति
दाड़िमीकुसुमोपमाः ॥१६३॥

परापराणाम्परमा त्वमेव परमेश्वरी।
यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तुसदसद्वा-
खिलात्मिके ॥१६४॥ पुनरप्यति-
रौद्रेण रूपेण पृथिवीतले। अवतीर्य
हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान्
॥१६५॥ तस्य सर्वस्य या
शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा।
ययात्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यति
यो जगत् ॥१६६॥ नन्दगोपगृहे
जाता यशोदागर्भसम्भवा। ततस्तौ

नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवा-
सिनी ॥१६७॥ सोऽपि निद्रा
वशंनीतः कस्त्वांस्तोतुमिहेश्वरः ॥
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव
च ॥१६८॥ वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते
अष्टाविंशतितमे युगे। शुम्भो नि-
शुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ
॥१६९॥ कारितास्ते यतोऽतस्त्वां
कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्। सा
त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि

संस्तुता ॥१७०॥ देव्युवाच ॥१७१॥ मोहयेतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकटभौ ॥ प्रबोधञ्च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ॥१७२॥ सर्वाबाधा प्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि । एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥१७३॥ बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥१७४॥ देवा ऊचुः ॥१७५॥ ऋषिरुवाच ॥१७६॥ वरदाहं

सुरगणाः वरं यन्मनसेच्छथ। तं
वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुप-
कारकम् ॥१७७॥ एवंस्तुता तदा
देवी तामसी तत्रवेधसा ॥१७८॥
देव्युवाच ॥१७९॥ विष्णोः प्रबोध-
नार्थाय निहन्तुं मधुकटभौ। नेत्रा-
स्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः
॥१८०॥ प्रणतानां प्रसीद-त्वं देवि
विश्वार्तिहारिणी। 'त्रैलोक्यवासि-
नामीड्ये लोकानां वरदा भव

॥१८१॥ निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तयामुक्तोजनार्दनः॥१८२॥ देवि प्रसीद परिपालय नोरि-भीतेर्नित्यं यथा सुरवधादधुनैव-सद्यः। पापानिसर्वजगतां प्रशमं नयाशुमुत्पातपाकजनितांश्च महो-पसर्गान्॥१८३॥ एकार्णवेऽहि-शयनात्ततः स ददृशे च तौ। मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्य

पराक्रमौ ॥१८४॥ विश्वेश्वरीत्वं परिपासिविश्वं विश्वात्मिका धारयसीतिविश्वम् । विश्वेशवंद्या भवती भवंती विश्वाश्रयाये त्वयि भक्तिनम्राः ॥१८५॥ क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ । समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधेभगवान् हरिः ॥१८६॥ रक्षांसियत्रोग्रविषाश्च नागाः यत्रारयो दस्युबलानि यत्र । दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये

तत्रस्थितात्वं परिपासि विश्वम्
॥१८७॥ पंच वर्षसहस्राणि
बाहुप्रहरणो विभु:। तावप्यतिब-
लोन्मत्तौ महामाया विमोहितौ
॥१८८॥ विद्यासु शास्त्रेषु विवेक-
दीपेष्वाद्येषुवाक्येषु चकात्वदन्या।
ममत्वगर्तेतिमहान्धकारे विभ्राम
यत्येतदतीवविश्वम् ॥१८९॥ उक्त
वन्तौ वरोऽस्मत्तौ व्रियतामिति
केशवम् ॥१९०॥ एतत्कृतं यत्क-

पराक्रमौ ॥१८४॥ विश्वेश्वरीत्वं परिपासिविश्वं विश्वात्मिका धारयसीतिविश्वम् । विश्वेशवंद्या भवती भवंती विश्वाश्रयाये त्वयि भक्तिनम्राः ॥१८५॥ क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ । समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधेभगवान् हरिः ॥१८६॥ रक्षांसियत्रोग्रविषाश्च नागाः यत्रारयो दस्युबलानि यत्र । दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये

तत्रस्थितात्वं परिपासि विश्वम्
॥१८७॥ पंच वर्षसहस्राणि
बाहुप्रहरणो विभु:। तावप्यतिब-
लोन्मत्तौ महामाया विमोहितौ
॥१८८॥ विद्यासु शास्त्रेषु विवेक-
दीपेष्वाद्येषुवाक्येषु चकात्वदन्या।
ममत्वगर्तेतिमहान्धकारे विभ्रामयत्येतदतीवविश्वम् ॥१८९॥ उक्त
वन्तौ वरोऽस्मत्तौ व्रियतामिति
केशवम् ॥१९०॥ एतत्कृतं यत्क-

दनंत्वयाद्यधर्मद्विषांदेविमहासुरा-
णाम् । रुपेरनेकैर्बहुधात्ममूर्तिंकृ-
त्वाम्बिकेतत्प्रकरोतिकान्या ॥११९॥
श्रीभगवानुवाच ॥११२॥ रोगान-
शेषानपहंसितुष्टारुष्टातुकामान्स-
कलानभीष्टान् ॥ त्वामाश्रिता-
नां नविपन्नराणां त्वामाश्रिताह्याश्र-
यतांप्रयान्ति ॥११३॥ भवेतामद्य-
मेतुष्टौ ममवध्यावुभावपि ॥११४॥
आसुरासृग्वसापंकचर्चितस्ते करो-

ज्वल । शुभायखड्गोभवतु चण्डि-
केत्वान्नतावयम् ॥१९५॥ किमन्येन
वरेणात्रएतावद्धि वृतंम्मम ॥१९६॥
हिनास्ति दैत्यतेजांसिस्वनेनापूर्यया
जगत् । सा घण्टा पातु नो देवि
पापेभ्योनस्सुतानिव ॥१९७॥
ऋषिरुवाच ॥१९८॥ ज्वालाकराल-
मत्युग्रमशेषाः सुरसूदनम् । त्रिशूल-
म्पातुनो भीतेर्भद्रकालिनमोस्तुते
॥१९९॥ वञ्चिताभ्यामिति तदा

सर्वमापोमयं जगत् ।। २००।। एतत्ते
वदनंसौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।।
पातुनस्सर्वभूतेभ्य: कात्यायनि
नमोस्तुते ।। २०१।। विलोक्यताभ्यां
गदितोभगवान् कमलेक्षण: ।।
आवांजहि न यत्रोर्वीसलिलेनप
रिप्लुता ।। २०२।। सर्वस्वरूपे सर्वेशे
सर्वशक्तिसमन्विते ।। भयेभ्यस्त्राहि-
नोदेवि दुर्गेदेविनमोस्तुते ।।२०३।।
ऋषिरुवाच ।। २०४।। मेधे सर-

स्वतिवरे भूतिवाभ्रवितामसि ॥ नियतेत्वंप्रसीदद्रूदेशो नारायणि नमोस्तुते ॥२०५॥ तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता। कृत्वा चक्रेणवैछिन्नेजघने शिरसीतयोः ॥२०६॥ लक्ष्मिलज्जेमहाविद्ये श्रद्धे पुष्टि स्वधे ध्रुवे ॥ महारात्रिमहाविद्ये नारायणिनमोस्तुते ॥२०७॥ एवमेषासमुत्पन्ना ब्रह्मणासंस्तुतास्वयम्। प्रभावमस्यादेव्यास्तुभूयः

श्रणुवदामिते ॥ २०८॥ दंष्ट्रा-
करालवदने शिरोमालाविभूषणे ।
चामुण्डेमुण्डमथने नारायणिनमो-
स्तुते ॥२०९॥ ऋषिरुवाच ॥२१०॥
शिवदूती स्वरुपेण हतदैत्यमहाबले ।
घोररूपे महारावे नारायणि नमो-
स्तुते ॥ २११॥ देवासुरमभूद्युद्ध-
म्पूर्णमब्दशतम्पुरा । महिषे सुराणा-
मधिपे देवानांच पुरन्दरे ॥ २१२॥
किरीटिनि महावज्रे सहस्रनय-

नोज्वले । वृत्रः प्राणहरेचैन्द्रि
नारायणि नमोस्तुत्ते ॥ २१३॥
तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यम्पराजितम् ।
जित्वा च सकलान्देवान्निद्रोऽभून्म-
हिषासुरः ॥२१४॥ नृसिंहरूपेणो-
ग्रेणहन्तुं दैत्यान्कृतोद्यमे । त्रैलो-
क्यत्राणसहिते नारायणिनमोस्तुते
॥२१५॥ ततः पराजितादेवाःप-
द्मयोनिम्प्रजापतिम् । पुरस्कृत्य गता-
स्तत्र यत्रेश गंरुड़ध्वजौ ॥२१६॥

गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोधृतवसुन्धरे ।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमो-
स्तुते ॥ २१७॥ यथा वृत्तन्तयोस्त-
द्वन्महिषासुरचेष्टितम् । त्रिदशाः
कथयामासुदेवाभिभवविस्तरम् ॥२१८॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीत परमायुधे ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि
नमोस्तुते ॥ २१९॥ सूर्येन्द्राग्न्य-
निलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च ॥
अन्येषां चाधिकारान् स्वयमेवा-

धितिष्ठति ॥ २२० ॥ मयूरकुक्कुट-
वृते महाशक्ति धरेऽनघे कौमारी
रूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु
॥ २२१ ॥ स्वर्गान्निराकृताः सर्वे
तेन देवगणाभुवि । विचरन्ति यथा
मर्त्यामाहिषेण दुरात्मना ॥ २२२ ॥
त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽ-
स्तुते ॥ २२३ ॥ एतद्वः कथितं सर्व-
ममरारिविचेष्टितम् । शरणं वः

प्रपन्नाः स्मोवधस्तस्य विचिन्त्यताम्
॥२२४॥ हंसयुक्तविमानस्थे
ब्रह्माणीरूपधारिणि । कौशाम्भक्षरिके
देवि नारायणि नमोस्तुते ॥२२५॥
इत्थं निशम्य देवानां वचांसि
मधूसुदनः। चकारकोपंशम्भुश्च
भ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥२२६॥ शर-
णागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि
नमोऽस्तुते ॥२२७॥ ततोऽति

कोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः। निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शङ्करस्य च ॥ २२८॥ सृष्टि स्थिति विनाशानां शक्तिभूते सनातनि। गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तुते ॥ २२९॥ अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः। निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥ २३०॥ सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके। शरण्ये त्र्यम्बके

गौरिनारायणि नमोऽस्तुते ॥ २३१॥
अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्त-
मिवपर्वतम्। ददृशुस्ते सुरास्तत्र-
ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥२३२॥
कलाकाष्ठादिरूपेण परिणाम-
प्रदायिनि। विश्वस्योपरतौ शक्ते
नारायणि नमोऽस्तुते ॥२३३॥
अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्।
एकस्थन्तदभून्नारीव्याप्तलोकत्रयन्त्विषा
॥२३४॥ सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य

हृदिंसस्थिते। स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तुते ॥२३५॥

यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम्। याम्येन चाभवन्केशा-बाहवो विष्णुतेजसा ॥२३६॥

सर्वभूता यदा देवि स्वर्गमुक्ति-प्रदायिनी। त्वंस्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तय: ॥२३७॥

सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत्। वारुणेन च जंघोरू

नितम्बस्तेजसा भुवः ॥ २३८॥
विद्याः समस्तास्तव देविभेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकयापूरितमम्बयैतत्का ते स्तुतिः
स्तव्यपरापरोक्तिः ॥ २३९ ॥ ब्रह्मण-
स्तेजसा पादौ तदंगुल्योऽर्कतेजसा ।
वसूनां च करांगुल्यः कौबेरेण च
नासिका ॥ २४० ॥ त्वं वैष्णवी-
शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजम्प-
रमासि माया । सम्मोहितं देवि

समस्तमेतत्त्वं वै प्रसन्ना भुवि-
मुक्तिहेतुः ।। २४१ ।। तस्यास्तु दन्ताः
सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा ।
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावक-
तेजसा ।। २४२ ।। आधारभूता
जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः
स्थितासि । अपां स्वरूपस्थितया
त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये
।। २४३ ।। भ्रुवौ च सन्ध्ययोस्तेजः
श्रवणावनिलस्य च ।। अन्येषां चैव

देवानां संभवस्तेजसां शिवा ॥२४४॥ देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद-प्रसीद मातर्जजगतोऽखिलस्य। प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥ २४५॥ ततः समस्त देवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्। तां विलोक्यमुदं प्रापुरमरा महिषा-र्दिताः ॥ २४६॥ देव्याहते तत्र महासुरेन्द्रे सेन्द्राः सुरावन्हिपुरोगमा-स्ताम्। कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टला-

भाद्विकासिवक्त्राब्जविकासिताशाः ॥२४७॥ शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक्। चक्रंच दत्तवान्कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः ॥२४८॥ ऋषिरुवाच ॥२४९॥ शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः। मारुतोदत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधीः ॥२५०॥ जज्वलुश्चाग्नयश्शान्ताः शान्तादिग्जनितस्वनाः ॥२५१॥

वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कुलिशादम-
राधिपः। ददौ तस्यै सहस्राक्षो
घण्टामैरावताद्गजात् ॥२५२॥
अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्स-
रोगणाः। ववुः पुण्यास्तथा वाताः
सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥२५३॥
कालदण्डाद्यमोदण्डं पाशं चाम्बु-
पतिर्ददौ। प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ
ब्रह्मा कमण्डलुम् ॥२५४॥ ततो
देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः।

बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा:
ललितंजगु: ॥ २ ५ ५ ॥ समस्तरोम-
कूपेषु निजरश्मीन् दिवाकर: ।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्मच-
निर्मलम् ॥ २५९॥ उत्पातमेघा:
सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययु: ।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंत्रस्त
पातिते ॥ २५७॥ क्षीरोदश्चामलंहा-
रमजरे च तथाम्बरे । चूड़ामणिन्तथा
दिव्यं कुण्डले कटकानि च ॥ २५८॥

ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन्दु-
रात्मनि। जगत्स्वास्थ्यमतीवाप
निर्म्मलंचाभवन्नभः ॥२५९॥ अर्ध-
चद्रं तथा शुभ्रं केयूरान्सर्वबाहुषु।
नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकम-
नुत्तमम् ॥२६०॥ स गतासुः पपा-
तोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः चाल-
यन्सकलाम्पृथ्वीं साब्धिद्वीपां
सपर्व्वताम् ॥२६१॥ अंगुलीय-
करत्नानि समस्तास्वगुंलीषु च।

विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुंचातिनि-
र्मलम् ॥ २६२॥ तमायान्तं ततो
देवीसर्वदैत्यजनेश्वरम् जगत्यां पात-
यामास भित्वा शूलेन वक्षसि ॥ २६३॥
अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यंच
दंशनम् । अम्लानपङ्कजां मालां शिर-
स्युरसि चापराम् ॥ २६४॥ स क्षिप्तो
धरणीम्प्राप्य मुष्टिंमुद्यम्य वेगितः ।

अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिका-
निधनेच्छया ॥ २६५॥ अददज्जल-
धिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम् ।
हिमवान्वाहनं सिंहं रत्नानि
विविधानि च ॥२६६॥ ततो
नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका
सह। उत्पाट्य भ्रामयामास चिक्षेप
धरणीतले ॥२६७॥ ददावशून्यं
सुरया पानपात्रं धनाधिपः। शेषश्च
सर्वनागेशो महामणिविभूषितम्

॥२६८॥ नियुद्धं खे तदा दैत्य-
श्चण्डिका च परस्परम्। चक्रतुः
प्रथमं सिद्ध मुनिविस्मयकारकरम्
॥२६९॥ नागहारं ददौ तस्यै
धत्तेयः पृथिवीमिमाम्। अन्यैरपि
सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥२७०॥
उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगन-
मास्थितः। तत्रापि सा निराधारा
युयुधे तेन चण्डिका ॥२७१॥
सम्मानिता निनादोच्चैः साट्टहा-

संमुहुर्मुहुः। तस्यानादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ॥२७२॥ तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले। स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः॥२७३॥ अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत्। चुक्षुभुस्सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे॥२७४॥ समुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः। देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत्

॥२७५॥ चचाल वसुधाचेलुः सकलाश्च महीधराः। जयेति देवाश्च मुदा तामुचः सिंहवाहिनीम् ॥२७६॥ चिच्छेदापततस्तस्य-मुद्गरंनिशितैः शरैः। तथापि सोऽभ्यधावत्तांमुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥२७७॥ तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः॥२७८॥ हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा

विसारथिः। जग्राह मुद्गरं घोरमम्बि-
कानिधनोद्यतः॥२७९॥ सन्नद्धा-
खिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः।
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य-
महिषासुरः ॥२८०॥ तस्यापतत
एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका। धनु-
र्मुक्तैश्शितैर्बाणैश्चर्मचार्ककरामलम्
॥२८१॥ अभ्यधावत तं शब्द-

मशेषैरसुरैर्वृतः । स ददर्श ततो देवीं व्याप्त लोकत्रयान्त्विषा ॥ २८२॥ ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रञ्च भानुमत् । अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥ २८३॥ पादाक्रान्त्यान्नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् । क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेनताम् ॥ २८४॥ छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे । चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे

स्थिताम् ॥२८५॥ दिशोभुज-
सहस्त्रेण समन्ताद्व्याप्य संस्थिताम् ।
ततः प्रववृते युद्धंतया देव्याः सुर-
द्विषाम् ॥२८६॥ ततः शरशतै-
र्देवीमाच्छदयत सोऽसुरः सापि
तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद
चेषुभिः ॥२८७॥ शस्त्रास्त्रैर्बहुधा-
मुक्तैरादीपितदिगन्तरम् । महिषा-
सुरसेनानीचिक्षुराख्यो महासुरः
॥२८८॥ मुक्तानि तेन चास्त्राणि

दिव्यानि परमेश्वरी । बभञ्ज लीलयै-
वोग्रहुङ्कारोच्चारणादिभिः ॥ २८९ ॥
युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबला
न्वितः । रथानामयुतैः षड्भिरु-
दग्राख्यो महासुरः ॥ २९० ॥
दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचेया-
न्यथाम्बिका । बभञ्ज तानि
दैत्येन्द्रस्तत् प्रतीघातकर्तृभिः
॥ २९१ ॥ अयुध्यतायुतानाञ्च
सहस्रेण महाहनुः । पञ्चाशद्भिश्च

नियुतैरसिलोमा महासुरः ॥२९२॥
शरवर्षैश्शितैश्शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव
दारुणैः। तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्व-
लोकभयंकरम् ॥२९३॥ अयुता-
नांशतैः षड्भिर्वाष्कलो युयुधेरणे।
गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः परिवारितः
॥२९४॥ ततः प्रववृते युद्धं देव्याः
शुम्भस्य चोभयोः। पश्यतां सर्व-
देवानामसुराणां च दारुणम्
॥२९५॥ वृतो रथानाङ्कोट्या च

युद्धे तस्मिन्नयुध्यत। विडाला-
ख्योऽयुतानाञ्च पञ्चाशद्भिरथा-
युतैः ॥२१६॥ ऋषिरुवाच
॥२१७॥ युयुधुः संयुगेतत्र रथानां
परिवारितः॥ अन्ये च तत्रायुतशोर-
थानागहयैर्वृताः॥२१८॥ अहं
विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदा स्थिता।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ
स्थिरोभव॥२१९॥ युयुधुस्सं-
युगेदेव्याः सहतत्र महासुराः। कोटि

कोटि सहस्रैस्तुरथानान्दन्तिनान्तथा
॥ ३०० ॥ देव्युवाच ॥ ३०१ ॥
हयानांच वृतोयुद्धे तत्राभून् महि-
षासुरः ॥ तोमरैर्भिन्दिपालैश्च
शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥ ३०२ ॥
ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणी
प्रमुखालयम् ॥ तस्या देव्यास्तनौ
जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥ ३०३ ॥
युयुधुस्संयुगे देव्या खड्गैः परशु
पट्टिशैः। केचिच्चचिक्षपुश्शक्तीः

केचित्पाशांस्तथापरे ॥३०४॥
एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का
ममापरा। पश्यैता दुष्ट मय्येव
विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥३०५॥ देवीं
खड्ग-प्रहारैस्तु ते तां हन्तुम्प्रचक्रमुः।
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि
चण्डिका ॥३०६॥ देव्युवाच
॥३०७॥ लीलयैव प्रचिच्छेद
निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ॥ अना-
यस्तानना देवीस्तूयमानासुरर्षिभिः

॥३०८॥ बलाबले पादुष्टेत्त्वमा-
दुर्गो गर्वमावह। अन्यासां बल
माश्रित्य युध्यसे याति मानिनी
॥३०९॥ मुमोचासुरदेहेषुशस्त्राण्य-
स्त्राणि चेश्वरी। सोऽपिक्रुद्धो धुतस-
टोदेव्या वाहन केशरी ॥३१०॥ निशु-
म्भंनिहतं दृष्टवा भ्रातरं प्राणसम्मि-
तम्। हन्यमानंबलं चैव शुम्भः क्रुद्धो-
ऽब्रबीद्वचः ॥३११॥ चचारा सुरसै-
न्येषु वनेष्विव हुताशनः॥ निश्वासा-

न्मुमुचेयांश्च युध्यमानारणेम्बिका
॥३१२॥ ऋषिरुवाच ॥३१३॥
त एवसद्यस्सम्भूतागणाश्शत सह-
स्रशः। युयुधुस्तेपरशुभिः भिंदि-
पालासिपट्टिशैः॥३१४॥ केचिद्विने
सुर सुराः केचिन्नष्टा महाहवात्।
भक्षिताश्चापरेकाली शिवदूती मृगा-
धिपैः॥३१५॥ नाशयन्तोऽसुर
गणान्देवी शक्त्युपबृंहिताः। अवाद-
यन्त पटहान् गणाः शङ्खास्तथा

परे ॥ ३ १ ६ ॥ खण्डं खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः, वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्र विमुक्तेनतथापरे ॥ ३ १ ७ ॥ मृदङ्गांश्चतथैवान्ये तस्मि-न्युद्धमहोत्सवे। ततोदेवीं त्रिशूलेन गदया शक्तिवृर्ष्टिभिः ॥ ३ १ ८ ॥ माहश्वेरी त्रिशूलेन भिन्नापेतु-स्तथापरे। वाराही तुण्डघातेनकेचि-च्चूर्णीकृताभूवि ॥ ३ १ ९ ॥ खड्गा-दिभिश्चशतशोनिजघानमहासुरान्।

पातयामास चैवान्यान् घण्टा-
स्वनविमोहितान् ॥ ३२०॥ कौमारी-
शक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः,
ब्रह्माणी मन्त्रपूतेन तोयेनान्येनि-
राकृताः ॥३२१॥ असुरान्भुवि-
पाशेन बद्ध्वाचान्यानकर्षयत्।
केचिद्द्विधाकृतास्तीक्ष्णैः खड्गपा-
तैस्तथापरे ॥३२२॥ ततः सिंह-
श्चखादोग्र दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान्।
असुरांस्तांस्तथाकाली शिवदूती

तथापरान् ॥ २ २ ३ ॥ विपोथिता-
निपातेन गदयाभुवि शेरते । वेमुश्च
केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशंहता:
॥ ३ २ ४ ॥ तस्य निष्क्रामतो देवी
प्रहस्य स्वनवत्तत: । शिरश्चिच्छेद
खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥ ३ २ ५ ॥
केचिन्निपतिता भूमौ भिन्ना: शूलेन
वक्षसि । निरन्तरा: शरौघेण कृता:
केचिद्रणाजिरे ॥ ३ २ ६ ॥ भिन्नस्य
तस्य शूलेन हृदयान्नि: सृतोऽपर: ।

महाबलो महावीर्यः तिष्ठेति पुरुषो
वदन् ॥३२७॥ श्येनानुकारिणः
प्राणान्मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः। केषा-
ञ्चिद्वाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथा-
परे ॥३२८॥ शूलहस्तं समायान्तं-
निशुम्भममरार्द्दनम्। हृदि विव्याध-
शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका
॥३२९॥ शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये
मध्ये विदारिताः। विच्छिन्न जङ्-
घास्त्वपरेपेतुरुर्व्याम्महासुराः॥३३०॥

तस्यापतत एवाशु गदाञ्चिच्छेद चण्डिका । खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥ ३३१ ॥ एकबाह्व- क्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधाकृताः । छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिता पुनरुत्थिताः ॥ ३३२ ॥ ततोनि- शुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डि- काम् ॥ अभ्यधावत वैहन्तुं दैत्यसेना- समावृतः ॥ ३३३ ॥ कबन्धाः युयु- धुर्देव्याः गृहीत परमायुधाः ।

ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यल-
याश्रिताः ॥३३४॥ ततोभगवती
क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्त्तिनाशिनी ।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैस्साय-
कांश्चतान् ॥३३५॥ कबन्धा-
श्छिन्न शिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपा-
णयः। तिष्ठतिष्ठेति भाषन्तो देवी
मन्ये महासुराः॥३३६॥ पुनश्च
कृत्वाबाहूनामयुतंदनुजेश्वरः, चक्रा-
युधेन दितिजश्छादयामास चण्ड-

काम् ॥ ३ ३ ७॥ पातितैरथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा । अगम्या साभवत्तत्रयत्राभूत्समहारणः ॥ ३ ३ ८॥ ततोनिशुम्भस्सम्प्राप्यचेतनामात्तकार्मुकः । आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ॥ ३ ३ ९॥ शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः । मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥ ३ ४ ०॥ ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघानतम् । स तदाभिहतो

भूमौ मूर्च्छितोनिपपात ह ॥ ३४१॥
क्षणेनतन्महासैन्यमसुराणांतथाम्बि-
का । निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारु-
महाचयम् ॥ ३४२॥ शुम्भमुक्ता
ञ्छरान्देवीशुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ
सहस्रसः ॥ ३४३॥ स च सिंहो
महानादमुत्सृजन्धुतकेसरः । शरीरे-
भ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति
॥ ३४४॥ सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं

लोकत्रयान्तरम् । निर्घातनिःस्वनो घोरोजितवानवनीपते ॥ ३४५॥ देव्यागणैश्चतैस्तत्र कृतं युद्धं-महासुरैः । यथैषान्तुष्टुवुर्देवाः पुष्प-वृष्टिमुचोदिवि ॥ ३४६॥ शुम्भेना-गत्ययाशक्तिर्म्मुक्ता ज्वालातिभी-षणा । आयान्ती वह्निकूटाभासा निरस्ता महोल्कया ॥ ३४७॥ ऋषिरुवाच ॥ ३४८॥ दुरात्मंस्तिष्ठ-तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा ।

तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाश-
संस्थितैः ॥३४९॥ निहन्यमानं
तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः। सेनानी
श्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथा-
म्बिकाम् ॥२५०॥ अट्टाट्टहासम-
शिवं शिवदूती चकार ह। तैश्शब्दै-
रसुरास्त्रेसु शुम्भः कोपं परं ययौ
॥३५१॥ स देवीं शरवर्षेण ववर्ष
समरेऽसुरः। यथा मेरुगिरेः शृङ्गन्तो-
यवर्षेण तोयदः ॥३५२॥ ततः
काली समुत्पत्य गगनं क्ष्माम-

ताडयत्। कराभ्यां तिन्ननादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहित॥३५३॥ तस्य छित्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान्। जघानतुरगान्बाणै-र्यन्तारञ्चैव वाजिनाम्॥३५४॥ ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभ-महामदैः। पूरयामास गगनं गां तथैवदिशोदश॥३५५॥ चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजञ्चातिसमु-च्छ्रितम्। विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः॥३५६॥ पूर-यामास ककुभो निजघण्टास्वनेन

च। समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवध-
विधायिना ॥ ३५७॥ सच्छिन्नधन्वा
विरथो हताश्वो हतसारथिः।
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्म-
धरोऽसुरः ॥ ३५८॥ तमायान्तं
समालोक्य देवी शङ्खमवादयत्।
ज्याशब्दञ्चापि धनुषश्चकारातो-
वदुःसहम् ॥ ३५९॥ सिंहमाहत्य
खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यति
वेगवान ॥३६०॥ सरथस्थस्तथा
त्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः। भुजैरष्टा-

भिरतुलैर्व्याप्याशेषम्बभौ नभः ॥३६१॥ तस्या खड्गोभुजम्प्राप्य-पफालनृपनन्दन । ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥३६२॥ तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे । भ्रातर्यतीवसंक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥३६३॥ चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्याम्म-हासुरः । जाज्वल्यमानन्तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात् ॥३६४॥ ततः परशुहस्तं तमायान्तंदैत्य-

पुङ्गवम् । आहत्य देवी बाणौ-
घैरपातयत भूतले ॥ ३ ६ ५ ॥ दृष्ट्वा
तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत ।
तच्छूलं शतधा तेन नीतं स च
महासुरः ॥ ३ ६ ६ ॥ आविध्याथ गदां
सोपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति । सापि
देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमा-
गता ॥ ३ ६ ७ ॥ हते तस्मिन्महावीर्ये
महिषस्य चमूपतौ । आजगाम गजा-
रूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥ ३ ६ ८ ॥

कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः। आयान्तम्मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥ ३६९॥ सोऽपि-शक्तिम्मुमोचाथ देव्यास्त-मम्बिकाद्रुतम्। हुङ्काराभिहताम्भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥ ३७०॥ छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिञ्चिक्षेप सोऽसुरः। तामप्यस्य द्विधाचक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥ ३७१॥ भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा

क्रोधसमन्वितः ।। चिक्षेप चामरः-
शूलम्बाणैस्तदपि साच्छिनत्
।। ३७२।। ताडिते वाहने देवी
क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् । निशुम्भस्याशु
चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम्
।। ३७३।। ततः सिंहोसमुत्पत्य
गजकुम्भान्तरे स्थितः। बाहुयुद्धेन
युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ।। ३७४।।
निशुंभो निशितं खड्गञ्चर्म चादाय
सुप्रभम् । अताडयन्मूर्ध्नि सिंहंदेव्या

वाहनमुत्तमम् ॥३७५॥ युद्ध्यमानौ ततःस्तौ तु तस्मान्नागान्महीगतौ। युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥३७६॥ चिच्छेदास्तांश्छरां स्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः। ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥३७७॥ ततो वेगात्ख-मुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा। करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ॥३७८॥ ततो युद्धमती

वासीद्देव्याशुम्भनिशुम्भयोः । शर-
वर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः
॥ ३७९॥ उदग्रश्चारणे देव्याः
शिलावृक्षादिभिर्हतः । दन्तमुष्टित-
लैश्चैवकरालश्च निपातितः ॥ ३८०॥
आजगाम महावीर्यःशुम्भोऽपि
स्वबलैर्वृतः ॥ निहन्तुं चण्डिकां
कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः
॥ ३८१॥ देवी क्रुद्धा गदापा-
तैश्चूर्णयामास चोद्धतम् । बाष्क-

लम्भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथा-
न्धकम् ॥३८२॥ तस्याग्रतस्तथा
पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः।
सन्दष्टौष्टपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवी-
मुपाययुः॥३८३॥ उग्रास्यमुग्र-
वीर्यञ्च तथैव च महाहनुम्। त्रिनेत्रा
च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी
॥३८४॥ हन्यमानम्महासैन्यं
विलोक्यामर्षमुद्वहन्। अभ्यधाव-
न्निशुम्भोऽथ मुख्यया सुरसेनया

॥३८५॥ बिडालस्यासिना काया-
त्पातयामास वै शिरः। दुर्द्धरं
दुर्म्मुखञ्चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम्
॥३८६॥ चकार कोपमतुलं
रक्तबीजे निपातिते। शुंभासुरो
निशुंभश्च हतेष्वन्येषु चाहवे
॥३८७॥ एवं संक्षीयमाणे तु
स्वसैन्ये महिषासुरः। माहिषेण
स्वरूपेण त्रासयामास तान्गणान्
॥३८८॥ ऋषिरुवाच॥३८९॥

कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथा-
परान्। लाङ्गूलताडितांश्चान्या-
ञ्छृङ्गाभ्याञ्च विदारितान् ॥३९०॥
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे
निपातिते। चकार शुंभो यत्कर्म
निशुंभश्चातिकोपनः ॥३९१॥
वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन
च। निःश्वासपवनेनान्या-
न्पातयामास भूतले ॥३९२॥

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन्भवता मम । देव्याश्चरितमाहात्म्यंरक्तबीज-वधाश्रितम् ॥ ३९३ ॥ निपात्य प्रम-थानीकमभ्यधावतसोऽसुरः । सिंहं हन्तुम्महादेव्याः कोपञ्चक्रे ततोऽ-म्बिका ॥ ३९४ ॥ राजोवाच ॥ ३९५॥ सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः । शृङ्गाभ्याम्पर्व-तानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥ ३९६॥ तेषाम्मातृगणो जातो

ननर्तासृङ्मदोद्धतः ॥३१७॥
वेगभ्रमणविक्षुण्णा महीतस्य व्यशी-
र्यत। लाङ्गूलेनाहताश्चाब्धिः
प्लावयामास सर्वतः॥३१८॥
नीरक्तश्च महीपालरक्तबीजो महा-
सुरः। ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रि
दशाः नृप॥३१९॥ धुतशृङ्गवि-
भिन्नाश्चखण्डं खण्डं ययुर्घनाः।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतु-
र्नभसोचलाः ॥४००॥ जघान

रक्तबीजं तं चामुण्डा पीतशोणितम् ।
स पपात मही पृष्ठे शस्त्रसंघ-
समाहतः ॥ ४०१ ॥ इति क्रोध-
समाध्मातमापतन्तं महासुरम् ।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय-
तदाकरोत् ॥ ४०२ ॥ तांश्चखादाथ
चामुंडा पपौ तस्य च शोणितम् ।
देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभि-
र्ऋष्टिभिः ॥ ४०३ ॥ सा क्षिप्त्वा
तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् ।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो

महामृधे ॥४०४॥ यतस्ततस्त-द्वक्त्रेण चामुंडा संप्रतीच्छति। मुखे समुद्गता येऽस्यारक्तपातान्महासुराः ॥४०५॥ न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोल्पिकामपि। तस्याहतस्य देहात्तु वहुशुश्रावशोणितम् ॥४०६॥ ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः। छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥४०७॥ तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः। तङ्खड्गचर्मणा सार्धं ततः सोऽभून्महा-

गजः ।।४०८।। मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम् । ततोऽसा-वाजघानाथ गदया तत्र चंडिकाम् ।।४०९।। करेण च महासिंहं तञ्चकर्ष जगर्ज च । कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ।।४१०।। भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्प-त्स्यन्ति चापरे । इत्युक्त्वा तान्ततो देवी शूलेनाभिजघानतम् ।।४११।। ततो महासुरो भूयो माहिषं

वपुरास्थित:। तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४१२॥ भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महा-सुरान्। एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति॥४१३॥ ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम्। पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुण-लोचना॥४१४॥ मच्छस्त्रापात-सम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान्। रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन

वेगिना ॥४१५॥ ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः। विषाणाभ्याञ्च चिक्षेप चण्डिकाम्प्रति भूधरान् ॥४१६॥ तान्विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा। उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥४१७॥ सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः। उवाचतम्मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥४१८॥ तैश्चा-

सुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् । व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥४१९॥ देव्युवाच ॥४२०॥ तस्या हतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि । पपातयो वै रक्तौघस्तेनासंछतशोऽसुराः ॥४२१॥ गर्ज गर्ज क्षणम्मूढ़ मधुयावत्पिवाम्यहम् । मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यंत्याशु देवताः ॥४२२॥ स चापि गदया दैत्यः

सर्वा एवा हनत् पृथक् । मातृः
कोप समाविष्टो रक्तबीजो महासुरः
॥४२३॥ ऋषिरुवाच ॥४२४॥
शक्त्या जघान कौमारी वाराही च
तथासिना । माहेश्वरी त्रिशूलेन
रक्तबीम्महासुरम् ॥४२५॥ एव-
मुक्त्वा समुत्पत्य सारूढ़ातम्महा-
सुरम् । पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेने-
नमताडयत् ॥४२६॥ वैष्णवी
चक्रभिन्नस्य रुधिरस्राव सम्भवैः।

सहस्रशोजगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्म्म-
हासुरैः ॥ ४२७॥ ततः सोऽपि
पदाक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः।
अर्धनिष्क्रान्त एवासीद्देव्या वीर्येण
संवृतः ॥४२८॥ वैष्णवी समरे
चैनं चक्रेणाभिजघानह गदया
ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम्
॥४२९॥ अर्धनिष्क्रान्त एवासौ
युध्यमानो महासुरः। तया महासिना
देव्याशिरश्छित्वा निपा-

तित:॥४३०॥ पुनश्चवज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा। ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाता: सहस्रश: ॥४३१॥ ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत्। प्रहर्षञ्च परं जग्मु: सकला देवतागणा: ॥४३२॥ ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा: रक्तसम्भवा:। समं मातृभिरत्युग्र शस्त्रपातातिभीषणम् ॥४३३॥ तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं

सह दिव्यैर्महर्षिभिः। जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरो गणाः ॥४३४॥ यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः। तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥४३५॥ ऋषिरुवाच ॥४३६॥ कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम्। समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥४३७॥ शक्रादयस्सुरगणानिहतेऽतिवीर्ये तस्मिन् दुरात्मनि

सुरारिबले च देव्याः। तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा वाग्भिः प्रहर्ष-पुलकोद्गमचारुदेहाः ॥४३८॥ युयुधु स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः। ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥४३९॥ देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ॥ तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां भक्त्या नताःस्म विदधातु शुभानि

सा नः ॥४४०॥ रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः। समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः ॥४४१॥ यस्याः प्रभावमतुलम्भगवाननन्तो ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलम्बलञ्च॥ सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय नाशाय चाशुभभयस्य मतिङ्करोतु॥४४२॥ पलायनपरान् दृष्टवा दैत्यान् मातृगणार्द्दितान्। योद्धुमभ्याय-

यौक्रुद्धोरक्तबीजो महासुरः ॥ ४४३ ॥
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्व-
लक्ष्मीः पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु
बुद्धिः ॥ श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य
लज्जा तां त्वां नताः स्म परिपालय
देवि विश्वम् ॥ ४४४ ॥ इति मातृगणं
क्रुद्धं मर्दयन्तम्महासुरान् । दृष्ट्-
वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः
॥ ४४५ ॥ किं वर्णयाम तव
रूपमचिन्त्यमेतत् किंचातिवीर्यम-

सुरक्षयकारि भूरि ॥ किंचाहवेषु चरितानि तवाद्‌भुतानि सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥ ४४६ ॥ चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभि-दूषिताः । पेतुः पृथिव्याम्पतितास्तां श्चखादाथ सा तदा ॥ ४४७॥ हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषैर्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा ॥ सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत मव्याकृता हि परमा प्रकृति-

स्त्वमाद्या ॥४४८॥ नखैर्विदारि-
ताश्चान्यान्भक्षयन्ती महासुरान्।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्ण-
दिगम्बरा ॥४४९॥ यस्याः समस्त-
सुरतासमुदीरणेन तृप्तिम्प्रयाति
सकलेषुमखेषु देवि। स्वाहासि
वै पितृगणस्यचतृप्तिहेतुरुच्यार्यसे-
त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥४५०॥
तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतव-
क्षसः। वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण

च विदारिता: ॥ ४५१ ॥ या मुक्तिहे-
तुरविचिन्त्य महाव्रतात्वमभ्यस्यसे
सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारै: । मोक्षार्थि-
भिर्मुनिभिरस्त समस्तदोषैर्विद्यासि
सा भगवती परमाहि देवि ॥ ४५२ ॥
ऐन्द्री कुलिशपातेन शतशो दैत्य-
दाना: । पेतुर्विदारिता:पृथ्व्यां रुधि-
रौघप्रवर्षिण: ॥४५३ ॥ शब्दात्मि-
कासुविमलर्ग्य जुषांनिधानमुद्गी-
थरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् ॥

देवि त्रयी भगवती भवभावनाय वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥४५४॥ माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी । दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥४५५॥ मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा । श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा गौरी त्वमेवशशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥४५६॥ कमण्डलु-

जलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजसः। ब्रह्माणी
चाकरोच्छत्रून्येन येन स्म धावति
॥४५७॥ ईषत्सहासममलं परि-
पूर्णचन्द्रबिम्बानुकारि कनकोत्तम-
कान्तिकान्तम्। अत्यद्भुतम्प्र-
हृतमात्तरुषातथापि वक्त्रं विलोक्य
सहसा महिषासुरेण ॥४५८॥
तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातवि-
दारितान्। खट्वाङ्गपोथितांश्चारी-
न्कुर्वती व्यचरत्तदा ॥४५९॥ दृष्ट्वा

तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकरालमुद्य-
च्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन
॥४६०॥ सा च तान्प्रहितान्बाणा-
ञ्छूलशक्तिपरश्वधान्। चिच्छेद लील-
याध्मातधनुर्म्मुक्तैर्महेषुभिः॥४६१॥
देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कु-
लानि। विज्ञातमेतदधुनैव यद-

स्तमेतन्नीतंबलं सुविपुलम्माहिषा-
सुरस्य ॥४६२॥ ततः प्रथममेवा-
ग्रेशरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः। ववर्षुरुद्ध-
तामर्षास्तां देवीममरारयः ॥४६३॥
ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषा-
न्तेषां यशांसि न च सीदति धर्म-
वर्गः। धन्यास्त एव निभृतात्मज-
भृत्यदारा येषां सदाभ्युदयदा भवति
प्रसन्ना ॥४६४॥ तेऽपि श्रुत्वा-
वचो देव्याः सर्वाख्यातम्महासुराः।

अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ॥४६५॥ धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्माण्यत्यादृत: प्रतिदिनं सुकृती करोति। स्वर्गं प्रयाति च ततो भवती प्रसादाल्लो-कत्रयेऽपि फलदा ननुदेवि तेन ॥४६६॥ यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम्। शिव-दूतीति लोकेस्मिंस्ततः सा ख्याति-मागता ॥४६७॥ दुर्गे स्मृताहरसि

भीतिमशेषजन्तो स्वस्थैः स्मृता
मतिमतीव शुभां ददासि । दारिद्र्य-
दुःखभयहरारिणि का त्वदन्या सर्वो-
पकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥४६८॥
बलाबले पादथचेद्धवन्तो युद्धकां-
क्षिणः । तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः
पिशितेन वा ॥४६९॥ एभिर्हतैर्जग-
दुपैति सुखन्तथैते कुर्वन्तु नाम
नरकाय चिराय पापम् । संग्राममृत्यु-
मधिगम्य दिवम्प्रयान्तु मत्वेति नूनम-

हितान्यिनिहंसि देवि ॥४७०॥ त्रैलो-
क्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु
हविर्भुजः। यूयं प्रयात पातालं
यदि जीवितुमिच्छथ ॥४७१॥ दृष्ट्वैव
किन्न भवती प्रकरोति भस्म सर्वान्सु-
रानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् । लोका-
न्प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थम्मतिर्भवति तेष्वपि तेऽति-
साध्वी ॥४७२॥ ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं
च दानवावतिगर्वितौ । ये चान्ये दान-

वास्तत्र युद्धाय समुपस्थिता:
॥४७३॥ खड्गप्रभानिकरविस्फुरणै-
स्तथोग्रैः शूलाग्रकान्ति निवहेन
दृशोऽसुराणाम् । यन्नागताविलय-
मंशुमदिन्दुखण्ड योग्याननन्तव
विलोकयतांतदेतत् ॥४७४॥ सा
चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता ।
दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भ-
निशुम्भयो: ॥४७५॥ दुर्वृत्तवृत्त-
शमनं तव देवि शीलं रूपं तथैत-

दविचिन्त्यमतुल्य मन्यैः। वीर्यं च हन्तृहृतदेवपराक्रमाणां वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥४७६॥ ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा। चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥४७७॥ केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारिकुत्र। चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥४७८॥ ततः

परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः।
हन्यन्तामसुरा शीघ्रं मम प्रीत्याह
चण्डिकाम् ॥४७९॥ त्रैलोक्यमे-
तदखिलं रिपुनाशनेन त्रातं त्वया
समरमूर्द्धनि तेऽपि हत्वा। नीता दिवं
रिपुगणा भयमप्यपास्तमस्माकमु-
न्मद्सुरारिभवं नमस्ते ॥४८०॥
वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि-
स्थिता। प्राप्ता सहस्र नयना यथा
शक्रस्तथैव सा ॥४८१॥ शूलेन पाहि

नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके। घटास्वनेन नः पाहिचापज्यानिःस्वनेन च ॥४८२॥ नारसिंहीं नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः॥ प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहति ॥४८३॥ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्याञ्च चण्डिके रक्ष दक्षिणे। भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥४८४॥ यज्ञवाराहमतुलं रूपं या विभ्रतो हरेः। शक्तिः साप्याययौ तत्र वारा-

हीर्बिभ्रती तनुम् ॥४८५॥ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्तिते। यानि चात्यर्थघोराणि तैरक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥४८६॥ तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता। शंखचक्र-गदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥४८७॥ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके। करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥४८८॥ कौमारी शक्ति-हस्ता च मयूरवरवाहना। योद्धु-

मभ्यााययौ दैत्यानम्बिका गुह-
रूपिणी ॥४८९॥ ऋषिरुवाच
॥४९०॥ माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूल
वरधारिणी। महाहिबलया प्राप्ता
चन्द्ररेखाविभूषणा ॥४९१॥ एवं
स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ॥
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धा-
नुलेपनैः ॥४९१॥ हंसयुक्तविमा-
नाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः। आयाता
ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते

॥४९३॥ भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तुधूपिता। प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान्प्रणतान् सुरान् ॥४९४॥ यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम्। तद्वद्देवहितच्छक्तिरसुरान्योद्धुमाययौ ॥४९५॥ देव्युवाच ॥४९६॥ ब्रह्मेशगुहविष्णुनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः। शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां युयुः ॥४९७॥ व्रियतां त्रिदशास्सर्वे

यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ॥ ४९८ ॥
एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुर-
द्विषाम् भवायामरसिंहानामतिवीर्य
बलान्विताः ॥४९९॥ देवा ऊचुः
॥५००॥ तन्निनादमुपश्रुत्य दैत्यसै-
न्यैश्चतुर्दिशम् । देवीसिंहस्तथा काली
सरोषैः परिवारिताः ॥५०१॥ भग-
वत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते
॥५०२॥ धनुर्ज्यासिंहघंटानां नादा-
पूरितदिङ्मुखा । निनादैर्भीषणैः

काली जिग्ये विस्तारितानना
॥५०३॥ यदयन्निहतः शत्रुरस्माक-
म्महिषासुरः। यदि चापि वरो देय-
स्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥५०४॥
ततः सिंहो महानादमतीवकृतवान्
नृप। घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका
चोपबृहंयत् ॥५०५॥ संस्मृता संस्मृ-
ता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः।
यश्चमर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यम-
लानने ॥५०६॥ आयान्तं चण्डिका

दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् । ज्यास्वनै पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥५०७॥ तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्द्धन-दाराद्रिसंपदाम् । वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥५०८॥ इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरव-शासनः । निर्जगाम महासैन्यसह-स्रैर्बहुभिर्वृतः ॥५०९॥ ऋषिरुवाच ॥५१०॥ कालका दौर्हृदामौर्याः कालकेयास्तथासुराः । युद्धाय सज्जा

निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥५११॥ इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथात्मनः । तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥५१२॥ कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै । शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छंतु ममाज्ञया ॥५१३॥ इत्येतत्कथितम्भूप सम्भूता सा यथा पुरा । देवीदेवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥५१४॥ अद्य सर्वबले-

दैत्याः षड्शीतिरुदायुधाः। कम्बू
नाञ्चतुराशीतिर्निर्यान्तुंस्वबलैर्वृताः
॥५१५॥ पुनश्च गोरीदेहात्सा समु-
द्भूता यथा भवत्। बधाय दुष्ट-
दैत्यानां तथा शुंभनिशुंभयोः
॥५१६॥ ततः कोपपराधीनचेता-
श्शुम्भ प्रतापवान्। उद्योगं सर्व-
सैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह
॥५१७॥ रक्षणाय च लोकानां
देवानामुपकारिणी। तच्छृणुष्व मया-

ख्यातं यथावत् कथयामि ते ॥५१८॥ चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते। बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वर: ॥५१९॥ ऋषिरुवाच ॥५२०॥ ॠषिरुवाच ॥५२१॥ पुरा शुंभनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपते:। त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हता मदबलाश्रयात् ॥५२२॥ यस्माच्चण्डञ्च मुण्डञ्च गृहीत्वा त्वमुपागता। चामुण्डेति

ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि
॥५२३॥ तावेव सूर्यतान्तद्वदधि-
कारन्तथैन्दवम् । कौबेरमथ याम्यं
च चक्राते वरणस्य च ॥५२४॥
तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ
महासुरौ । उवाच काली कल्याणीं
ललितं चण्डिका वचः ॥५२५॥
तावेव पवनर्द्धिञ्च चक्रतुवह्निकर्मच ।
ततो देवाविनिर्धूताभ्रष्टराज्याः परा-
जिताः ॥५२६॥ ऋषिरुवाच

॥५२७॥ हृताधिकारास्त्रिदशास्ता-
भ्यां सर्वे निराकृताः। महासुराभ्यां
तांदेवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥५२८॥
मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महा-
पशु। युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं
च हनिष्यसि ॥५२९॥ तयास्माकं
वरोदत्तो यथापत्सुस्मृताखिला। भव-
तां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमा-
पदः ॥५३०॥ शिरश्चण्डस्य काली
च गृहीत्वामुण्डमेव च। प्राह

प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्यचाण्डिकाम्
॥५३१॥ इतिकृत्वामतिन्देवाहिम-
वन्तं नगेश्वरम् । जग्मुस्तत्र ततोदेवीं
विष्णुमायाम्प्रतुष्टुवुः ॥५३२॥ हत-
शेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपा-
तितम् । मुण्डंच सुमहावीर्यं दिशो-
भेजेभयातुरम् ॥५३३॥ देवाऊचुः
॥५३४॥ अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां
दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् । तमप्यपा-
तयद्भूमौ सा खड्गाभिहतंरुषा

॥५३५॥ नमो दैव्यैमहादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणतास्मताम् ॥५३६॥ उत्थाय च महासिंहं देवी चण्डमधावत। गृहीत्वा चास्यकेशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥५३७॥ रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमोनमः। ज्योत्स्नायैचेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततन्नमः ॥५३८॥ ततो जहासातिरुषा भीमम्भैरवनादिनी। कालीकरा

लवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥५३९॥
कल्याण्यै प्रणतां ऋद्ध्यै सिद्ध्यैकूर्मों
नमोनमः। नैऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै
शर्वाण्यै ते नमोनमः ॥५४०॥
तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि
तन्मुखम्। बभुर्यथार्कबिम्बानि सुब-
हूनिघनोदरं ॥५४१॥ दुर्गायै दुर्ग-
पारायै सारायै सर्वकारिण्यै। ख्यात्यै
तथैव कृष्णायै धूम्रायै सतत-
न्नमः ॥५४२॥ शरवर्षैर्महाभी-

मैर्भीमाक्षींतां महासुरः। छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः ॥५४३॥ अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः। नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥५४४॥ क्षणेन तद्बलं सर्वमसुराणां निपातितम्। दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥५४५॥ या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता

नमस्तस्यै ॥५४६॥ असिना निहताः केचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः। जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥५४७॥ नमस्तस्यै ॥५४८॥ बलिनां तद्बलं सर्वमसुराणान्दुरात्मनाम् । ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ॥५४९॥ नमस्तस्यै नमोनमः ॥५५०॥ तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः॥ मुखेन जग्राह रुषा

दशनैर्मथितान्यपि ॥ ५५१ ॥ या देवी सर्वभुतेषु चेतनेत्यभिधीयते। नमस्तस्यै ॥५५२॥ एकं जग्राह केशुषु ग्रीवायामथ चापरम्। पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥ ५५३ ॥ नमस्तस्यै ॥ ५५४॥ तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह। निःक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥ ५५५॥ नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ५५६ ॥ पार्ष्णिग्राहा-

कुंशग्राहियोधघण्टासमन्वितान् । समादायैकहस्तेन मुखेचिक्षेपवारणान् ॥५५७॥ या देवीसर्वभूतेषु बुद्धिरूपेणसंस्थिता । नमस्तस्यै ॥५५८॥ सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान् । सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ॥५५९॥ नमस्तस्यै ॥५६०॥ अतिविस्तारवदना जिह्वाललन भीषणा । निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा

॥५६१॥ नमस्तस्यै नमोनमः
॥५६२॥ विचित्रखट्वाङ्गधरा नर-
मालाविभूषणा। द्वीपिचर्मपरीधाना
शुष्कमांसातिभैरवा ॥५६३॥ या-
देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थि-
ता। नमस्तस्यै ॥५६४॥ भ्रुकुटी-
कुटिलात्तस्याः ललाटफलकाद्-
द्रुतम्। काली करालवदना विनि-
ष्क्रान्तासिपाशिनी ॥५६५॥ नम-
स्तस्यै ॥५६६॥ तत कोपञ्चका-

रोच्चैरंबिका तानरीन्प्रति। कोपेन चास्या वदनम्मसीवर्णमभूत्तदा ॥५६७॥ नमस्तस्यै नमोनमः ॥५६८॥ ते दृष्ट्वा तां समादा-तुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः। आकृष्टचा-पासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥५६९॥ या देवीसर्वभूतेषु क्षुधा-रूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै ॥५७०॥ ददृशुस्ते ततो देवीमी-षद्धासां व्यवस्थिताम्। सिंहस्योपरि

शैलेन्द्रशृंगे महति कांचने ॥५७१॥ नमस्तस्यै ॥५७२॥ आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः। चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥५७३॥ नमस्तस्यै नमोनमः ॥५७४॥ ऋषिरुवाच ॥५७५॥ या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ॥५७६॥ तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातितें। शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा

गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ॥ ५७७॥ नमस्तस्यै ॥ ५७८॥ केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि। तदा शेषायुधैस्सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥ ५७९॥ नमस्तस्यै नमोनमः ॥५८०॥ हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ। तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥५८१॥ या देवीसर्वभूतेषु शक्तिरूपेणसंस्थिता। नमस्तस्यै

॥५८२॥ चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः। आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥५८३॥ नमस्तस्यै ॥५८४॥ श्रुत्वातमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम्। बलञ्च क्षयितं कृत्स्नं देवी केसरिणा ततः ॥५८५॥ नमस्तस्यै नमोनमः ॥५८६॥ क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना। तेन केसरिणा देव्या बाहनेनातिकोपिना

॥५८७॥ या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता नमस्तस्यै ॥५८८॥ बिच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे। पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषान्धुतकेसरः ॥५८९॥ नमस्तस्यै ॥५९०॥ केषाञ्चित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी। तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥५९१॥ नमस्तस्यै नमोनमः ॥५९२॥ कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान्। आक्रान्त्या

चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान्
॥५९३॥ या देवी सर्वभूतेषु
क्षान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै
॥५९४॥ ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा
नादं सुभैरवम्। पपातासुरसेनायां
सिंहो देव्याः स्ववाहनः॥५९५॥
नमस्तस्यै॥५९६॥ अथ क्रुद्धं महा-
सैन्यमसुराणां तथाम्बिका। ववर्ष
सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः
॥५९७॥ नमस्तस्यै नमोनमः

॥५९८॥ इत्युक्तःसोऽभ्यधावत्ता-
मसुरो धूम्रलोचनः। हुङ्कारेणैव
तम्भस्म च साच्चकाराम्बिका ततः
॥५९९॥ या देवी सर्वभूतेषु
जातिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै
॥६००॥ ऋषिरुवाच ॥६०१॥
नमस्तस्यै ॥६०२॥ दैत्येश्वरेण
प्रहितो बलवान् बलसंवृतः। बला-
न्नयसि मामेवं ततः किन्तेकरोम्यहम्
॥६०३॥ नमस्तस्यै नमोनमः

॥६०४॥ देव्युवाच ॥६०५॥ या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै ॥६०६॥ न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति, ततोबलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥६०७॥ नमस्तस्यै ॥६०८॥ स दृष्ट्वा तां ततो देवींतुहिनाचलसंस्थिताम्। जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ॥६०९॥ नमस्तस्यै नमोनमः ॥६१०॥

तेनाज्ञाप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो
धूम्रलोचनः। वृतः षष्ट्या सहस्रा-
णामसुराणां द्रुतं ययौ ॥६११॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण
संस्थिता। नमस्तस्यै ॥६१२॥
ऋषिरुवाच ॥६१३॥ नमस्तस्यै
॥६१४॥ तत्परित्राणदः कश्चिद्य-
दिवोत्तिष्ठतेऽपरः। स हन्तव्योऽम-
रोवापि यक्षो गन्धर्व एव वा
॥६१५॥ नमस्तस्यै नमोनमः

॥६१६॥ हे धुम्रलोचनाशु त्वं स्व-सैन्यपरिवारितः। तामानय बलाद्-दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥६१७॥ या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै ॥६१८॥ तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः। सक्रोधः प्राह दैत्यानामाधिपं-धूम्रलोचनम् ॥६१९॥ नमस्तस्यै ॥६२०॥ इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः। समाचष्ट समा

गम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥ ६२१॥
नमस्तयै नमोनमः ॥ ६२२॥ ऋषि-
रुवाच ॥ ६२३॥ या देवी सर्वभूतेषु
कान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै
॥ ६२४॥ स त्वं गच्छ मयोक्तन्ते
यदेतत्सर्वमादृतः। तदाचक्ष्वाऽसुरे-
न्द्राय स च युक्तङ्करोतु तत् ॥ ६२५॥
नमस्तस्यै ॥ ६२६॥ एवमेतद्बली
शुंभो निशुम्भश्चातिवीर्य्यवान् ।
किङ्करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता

पुरा ॥६२७॥ नमस्तस्यै नमोनमः ॥६२८॥ देव्युवाच ॥६२९॥ या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मी रूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै ॥६३०॥ सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः॥ केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ॥६३१॥ नमस्तस्यै ॥६३२॥ इन्द्राद्याःसकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे। शुम्भा-

दीनां कथन्तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ।। ६ ३ ३ ।। नमस्तस्यै नमो-नमः ।। ६ ३ ४ ।। अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि । तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमे-किका ।। ६ ३ ५ ।। या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै ।।६ ३ ६ ।। अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः ।। त्रैलोक्ये कः पुमां-स्तिष्ठेदग्रेशुंभनिशुंभयोः ।। ६ ३ ७ ।।

नमस्तस्यै ॥६३८॥ दूत उवाच ॥६३९॥ नमस्तस्यै नमोनमः ॥६४०॥ तदागच्छतु शुंभोऽत्र निशुंभो वा महासुरः॥ मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ॥६४१॥ या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै ॥६४२॥ यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति। यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति

॥६४३॥ नमस्तस्यै ॥६४४॥
किन्त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या
तत्क्रियते कथम्। श्रूयतामल्प-
बुद्धित्वात्प्रतिज्ञाया कृता पुरा
॥६४५॥ नमस्तस्यै नमोनमः
॥६४६॥ सत्यमुक्तंत्वया नात्र
मिथ्या किंचित्त्वयोदितम्। त्रैलोक्या-
धिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि
तादृशः ॥६४७॥ या देवी सर्व-
भूतेषुदयारूपेण संस्थिता। नमस्त-

स्यै ॥ ६४८॥ देव्युवाच ॥ ६४९॥ नमस्तस्यै ॥ ६५०॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी गंभीरान्तः स्मिता जगौ। दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥ ६५१॥ नमस्तस्यै नमोनमः ॥ ६५२॥ ऋषिरुवाच ॥ ६५३॥ या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै ॥ ६५४॥ परमैश्वर्यमतुलम्प्राप्स्यसेमत्परिग्रहात्। एतद्बुद्ध्या समालोच्य मत्परि-

ग्रहतां व्रज ॥६५५॥ नमस्तस्यै
॥६५६॥ मां वा ममानुजं वापि
निशुम्भमुरुविक्रमम् । भज त्वं चं
चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः
॥६५७॥ नमस्तस्यै नमोनमः
॥६५८॥ स्त्रीरत्नभूता त्वां देवि
लोके मन्यामहे वयम् । सात्वम-
स्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो
वयम् ॥६५९॥ या देवी सर्वभूतेषु
मातृरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै

॥६६०॥ यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च। रत्नभूतानि-भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥६६१॥ नमस्तस्यै ॥६६२॥ क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नम्ममामरैः उच्चैश्श्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥६६३॥ नमस्तस्यै नमो-नमः॥६६४॥ त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः। तथैव गजरत्नं च हृत्वा देवेन्द्रवाहनम्

॥ ६ ६ ५ ॥ या देवीसर्वभूतेषु भ्रान्ति
रूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै
॥ ६ ६ ६ ॥ मम त्रैलोक्यमखिलम्मम
देवा वशानुगाः । यज्ञभागानहं सर्वा-
नुपाश्नामि पृथक् पृथक् ॥ ६ ६ ७ ॥
नमस्तस्यै ॥ ६ ६ ८ ॥ अव्याहताज्ञः
सर्वासु यः सदा देवयोनिषु । निर्ज्जि-
ताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणु-
ष्वतत् ॥ ६ ६ ९ ॥ नमस्तस्यै नमो-
नमः ॥ ६ ७ ० ॥ देवि दैत्येश्वरः शुम्भ-

स्त्रैलोक्ये परमेश्वरः। दूतोऽहम्प्रेषि-
तस्तेनत्वत्सकाशमिहागतः॥६७१॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चा-
खिलेषु या। भूतेषु सततं तस्यै
व्याप्तिदेव्यै नमोनमः॥६७२॥
दूतउवाच॥६७३॥ चितिरूपेण
याकृत्स्नमेतद्व्याप्यस्थिता जगत्।
नमस्तस्यै॥६७४॥ स तत्र गत्वा
यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने। सा
देवीं तान्ततः प्राह श्लक्ष्णम्मधुरया

गिरा: ॥६७५॥ नमस्तस्यै ॥६७६॥ इति चेति च वक्तव्या सागत्या वचनान्मम । यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥६७७॥ नमस्तस्यै नमो नम: ॥६७८॥ निशम्येति बच: शुम्भ: सतदा चण्डमुण्डयो: । प्रेषयामाससुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ॥६७९॥ स्तुता सुरै: पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथासुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता । करोतु सा न:शुभ-

हेतुरीश्वरी शुभानिभद्राण्यभिहन्तु
चापदः ॥६८०॥ ऋषिरुवाच
॥६८१॥ या साम्प्रतञ्चोद्धत-
दैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्न-
मस्यते ॥ या च स्मृता तत्क्षणमेव
हन्ति नः सर्वापदो भक्तिवि-
नम्रमूर्तिभिः ॥६८२॥ एवं दैत्येन्द्र
रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न
गृह्यते ॥६८३॥ ऋषिरुवाच

॥६८४॥ निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः। वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी॥६८५॥ एवं स्तवादियुक्तानां देवानान्तत्र पार्वती। स्नातुमभ्या ययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन॥६८६॥ मृत्यो-रुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीशत्वया हृता। पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे॥६८७॥ साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तुयतेऽत्र का। शरीर-

कोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवी-
च्छिवा ॥ ६८८॥ छत्रन्ते वारुणङ्गेहे
काञ्चनश्चावि तिष्ठति। तथायं
स्यन्दनवरो यः पुरासीत्प्रजापते
॥ ६८९॥ स्तोत्रम्ममैतत् क्रियते
शुम्भदैत्यनिराकृतैः। देवैस्समस्तैस्स-
मरे निशुम्भेन पराजितैः ॥ ६९०॥
निधिरेषः महापद्मः समानीतो
धनेश्वरात्। किञ्जल्किनीं ददौ
चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥ ६९१॥
शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृ-

ताम्बिका । कौशिकीति समस्तेषु
ततो लोकेषु गीयते ॥ ६१२॥
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति
तेऽङ्गणे । रत्नभूतमिहानीतं यदा-
सीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥ ६१३॥ तस्यां
विनिर्गतायान्तु कृष्णाभूत्सापि
पार्वती । कालिकेतिसमाख्याता
हिमाचलकृताश्रया ॥ ६१४॥ ऐरा-
वतस्समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात् ।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैः श्रवा-

हयः ॥६९५॥ ततोऽम्बिकां परं रूपम्बिभ्राणां सुमनोहरम्। ददर्श- चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनि- शुम्भयोः ॥६९६॥ यानिरत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो। त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे॥६९७॥ ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनो- हरा। काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम्॥६९८॥

स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयंती दिश-
स्त्विषा। सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र
ताम्भवान्द्रष्टुमर्हति ॥६९९॥ नैव
तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्त-
मम्। ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां
चासुरेश्वर ॥७००॥

ॐ तत्सत् मार्कण्डेय पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी माहात्म्ये अध्याय देवतायै नमोनमः॥

अक्षर न्यासं कुर्यात्, ध्यानपूर्वक

देवीसूक्तं पठेत् ॥ अष्टोत्तरशतं नवार्णमंत्रं जपेत् । रहस्य त्रयं पठेत् ॥ हवन समये कवचा हुति निषेधः ॥ तत्र सप्तशतीमध्ये कवच पंचदश-मंत्रः प्रमाणेदुर्गोपाशनाकल्पद्रुमेषु ॥१६०॥ मंत्रकाउत्तरार्ध १९२-१६४-१६६-१६८-१७०-मंत्रकापूर्वार्धपुनः १९५-१९६-१९७-१९९ पुनः २०१-२०३-पुनः ४८२-४८४-४८६-४८८ ॥

मंत्र कवच है अतः इन मंत्रों पर आहुतिदेना महाअरिष्ट है।

॥ इति मन्त्र प्रतिलोमपाठः ॥

अथ बगलामुखीस्तोत्रम्

।। श्री गणेशायनमः ।। अस्यश्रीबगलामुखी स्तोत्र मंत्रस्य नारदऋषिः वृह-तीछन्दः महामुखी बगला मुखीदेवता श्रीवग-लामुखी प्रसाद-सिद्धयर्थे जपे विनियोगः र्ल्हींह-दयाय नमः बगलामुखी शिर-से स्वाहा सर्वदुष्टानां शिखायै वषट् वाचं मुखं पदं स्तंभय कवचायहुं बुद्धिंविनाशय नेत्रत्रयाय बौषट् जिह्वांकीलयल्हीर्नुस्वाहाअस्त्रायफट् एवंमगुष्टादिः। सौवर्णासन संस्थितां तांत्रिनयनांपीतांशुकोल्हासिनीं हेमा-

भांगरुचिंशशांकमुकुटां सच्चपक स्त्रग्युतां हस्तेमुगदरपाशबद्धरसनां संबिभ्रतींभूषणं व्याप्तांगीबगलामुखीं त्रिजगतांसंस्तंभनीं चिंतये ? मानसो पचारैस्संपूज्यगुह्योतिनिवेदयेत्ह्ली बग-लामुखी सर्वदुष्टानांबाचंमुखंपदंस्तं-भय जिह्वांकीलयबुद्धिंविनाशय-ह्लींस्वाहा ॐ अस्य श्रीबगलामुखी स्तोत्र-महामंत्रस्यनारदऋषिः अनु-ष्टुप्छंदः महामायाबगलामुखीदेव-ताक्लीं-बीजं स्वाहाशक्तिः ममसंमु-खानां विमुखदुष्टानां वाङ्मुख-

स्तंभनार्थम् महामायावगलामुखी-
प्रीत्यर्थेजपेविनियोगः गंभीरां च मदो-
न्मत्तांस्वर्णकांतिसमप्रभां चतुर्भुजां-
त्रिनयनांकमलासनसंस्थितां ॥ १ ॥
मुद्गरंदक्षिणापाशं वा मेजिह्वांवज्रकं
पीतांवर-धरासाङ्गा दृढ़पीनपयोधरां
॥२॥ हेमकुंडलभूषां च पीतचंद्रार्ध
शेखरां पीतभूषणभूषांगीं स्वर्ण-
सिंहासने-स्थितां ॥३॥ एवंध्यात्वातु
देवेशीअरिस्तभ्म्मनकारिणीं महा-
विद्यामहामायां साधकस्यवरप्रदाम्
॥ ४ ॥ यस्यास्स्मरणमात्रेणत्रैलो-

क्यं स्तंभयेत्क्षणात् पीतवस्त्रांत्रिने-
त्रां च द्विभुजांदाहकोज्वलां ॥ ५ ॥
शिलापर्वतहस्तां च रिपुकम्पां मदो-
त्कटां वैरिनिर्दलनार्थायस्मरेतबग-
लामुखी ॥ ६ ॥ मध्येसुधाब्धिमणि-
मण्डप रत्नवेद्यां सिंहसनोपरिग-
तांपरिपीतवर्णां पीतांवराभरणामा-
ल्यविभूषितांगी देवी नमामिधृत-
मुद्गरवैरिजिह्वाम् ॥ ७ ॥ जिह्वाग्रमादा-
यकरेणदेवीं वामेनशत्रून्परिपीडयंती
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीतांव-

राढ्यां द्विभुजां नमामि ॥८॥
त्रिशूलधारिणीमम्बां सर्वसौभा-
ग्यदायिनीं सर्वश्रृंगारवेषाढ्यां
देवीं ध्यात्वाप्रपूजयेत् ॥९॥ चलत-
कनककुंडलोल्लसित चारुगंडस्थलीं
लसत् कनकचंपकद्युतिविरा-
जितचंद्राननां गदाहतविपक्षकां-
कलितवैरिचलांस्मरामिबगलामुखीं
विमुखवाङ्मुखस्तंभनीम् ॥१०॥
पीयूषोदधिमध्यचारु विलसद्र-
क्तोत्पलेमण्डपे सत्सिंहासनमूलपा-

तितरिपुप्रेतासनाध्यासिनीं स्वर्णा-
भांकरपीडितारिरसनांभ्राम्यद्गदांबि-
भ्रंतीमित्यंश्पतितस्ययांतिविलयंस-
द्योऽथसर्वापदः ॥११॥ देवित्वच्चर-
णांवुजेवितनुतेयः पीतपुष्पांजलिं
भक्त्यावामकरेनिधाय च पुनर्मंत्रंमनो
ज्ञाक्षरांपीठध्यानपरोपिकुंभकवशात्
वीजंस्मरेत्पार्थिवं तस्यामित्र
मुखस्यवाग्गतिपदः स्तंभोभवेत्तत्क्ष-
णात् ॥१२॥ मंत्रस्तावदलंविपक्ष-
दलनेस्तोत्रंपवित्रंच ते यंत्रंवा-

दिविपक्षपक्षदलनंत्वंयंत्रिणायंत्रितं
मातश्रीविगलेतिनामललितं यस्या-
स्तिजंतोर्मुखेत्वंनामग्रहणेन संसदि
मुखस्तंभोभवेद्वादिनां ॥१३॥
वादीमूकतिरंकतिक्षितिपतिर्वैश्वानरः
शीततिक्रोधी शाम्यतिदुर्जुनः सुज-
नतिः क्षिप्रानुगः खंजतिगर्वीखर्व-
तिसर्वविच्चजड़तित्वद्यंत्रिणां यंत्रितः
श्रीनित्येवगलामुखिप्रतिदिनं कल्या-
णि तुभ्यंनमः ॥१४॥ दुष्टस्तंभनमु
ग्रवीर्यशमनंदारिद्रोविध्वंसनं भूभृद्धी-

शमनं चलन्मृगदृशांचेतः समा
कर्षणंसौभाग्यैकनिकेतनंममदृशोः
कारुण्यपूर्णामृतं मृत्योर्मारणमावि-
रस्तुपुरतोमातस्त्वदीयंवपुः ॥ १५ ॥
त्वंविद्यापरमात्रिलोकजननी विघ्नौघ-
संछेदिनी योषाकर्षणकारिणीच
सुमहावंधैकसंछेदिनी दुष्टोच्चाटन-
कारिणीजनमनः सम्मोहसंदायिनी
जिह्वाकीलनवैभवाविजयतेब्रह्माब्धि-
विद्यापरा ॥१६॥ गेहंनाकतिगर्वितः
प्रणमतिः स्त्रीसंगमोमोक्षतिर्द्वेषी-

मित्रातिपातकंसुकृताति दासातिमृत्यु-
क्ष्मावन्नभो वैंद्यातिदूषणंगुणयतित्व-
त्पादसंसेचिनां त्वांबंदेभवमीति भंजन-
करीं गौरीगिरीशप्रियां ॥१७॥ मात-
स्तंभयमाद्विपक्षवदनंजिह्वांचलां की-
लय ब्राह्मीमुद्रयाशु धिषणामुग्रां गतिं
स्तम्भय । शत्रूंश्चूर्णय देवि तीक्ष्ण-
गदया गौराङ्गि पीताम्बरे विघ्नौघं
बगले ! हर प्रणमतां कारुण्यपूर्णे-
क्षणे ॥१८॥ मातर्भैरवि भद्रकालि-
गिरिजेवाराहिविश्वाश्रये, श्रीविद्ये

समये महेशि बगले कामेशि रामे रमे। मातङ्गित्रिपुरे परात्परतरे स्वर्गापवर्गप्रदे, दासोऽहं शरणागतः करुणया विश्वेश्वरि त्राहिमाम् ॥१९॥ संकष्टेचौरसंघेप्रहरणसमये-बंधनागामध्ये विद्यावादेप्रवादेप्रकुपितनृपतौदिव्यकालेनिशायां वश्येत्वेस्तंभनेवारिपुवधसमयेनिर्विशंकोरणेव धैर्यंतिष्ठनत्रिकालंतवपठति शिवं-प्राप्नुयादाशुधीरः ॥२०॥ नित्यंस्तोत्रमिदंमनोरमतरं देव्यापठेत्सादरं-

धृत्वायंत्रामिदंतथैवसमरेवाहौकरेवा-
गले राजानोवरगामिनश्च करिणः
सर्पाः मृगेंद्रखलास्तेवैयांतिविमोहि-
तरिपुगणाः लक्ष्मीः स्थिराः सिद्धयः
॥२१॥ अनुदिनमभिरामंसाधको-
यस्त्रिकालं पठतिचभुवनेशैः पूज्य-
तेदेवसंघैः भवतिसकलकृत्संकल्पा-
न्तस्यदृष्टयावलोके भवतिपरम-
सिद्धिर्लोकमातापरांबा ॥२२॥
यत्कृतं जपसन्नेन गदितं परमेश्वरि
शत्रूनांस्तंभनार्थायतद्गृहाणनमो-

स्तुते ॥२३॥ विद्यालक्ष्मीः सर्व-
सौभाग्यता च पुत्राः पौत्राः
संपदोऽभीष्टसिद्धिः मानः श्रेयः-
पश्यतासर्वलोकेप्राप्ताभूतलेत्वत्परेणा-
॥२४॥ इदं ब्रह्मास्त्र माख्यातंत्रि-
लोकेषुदुर्लभं गुरुभक्तायदातव्यं न
देयंयस्यकस्यचित् इति श्रीअथर्बण
वृहस्पतिनारदोक्तं वगलामुखी ॥

॥ स्तोत्रक्यानणक चत्वारिंशतमोध्यायः ॥

वै. कृ० गुरुः संवत १९२२



अथ देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥ १ ॥

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ २ ॥

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ ३ ॥

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ ४॥

परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥ ५॥

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥ ६॥

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।

कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥ ७॥
न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः॥ ८॥
नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः।
श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥ ९॥
आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गे करुणार्णविशि।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥ १०॥

जगदम्ब विचित्रमत्र किं
परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि ।
अपराधपरम्परापरं
न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥११॥

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि ।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु ॥१२॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

6

१२ जुलाई १९९५, गुरू पूर्णिमा के पावन पर्व पर प्रकाशित